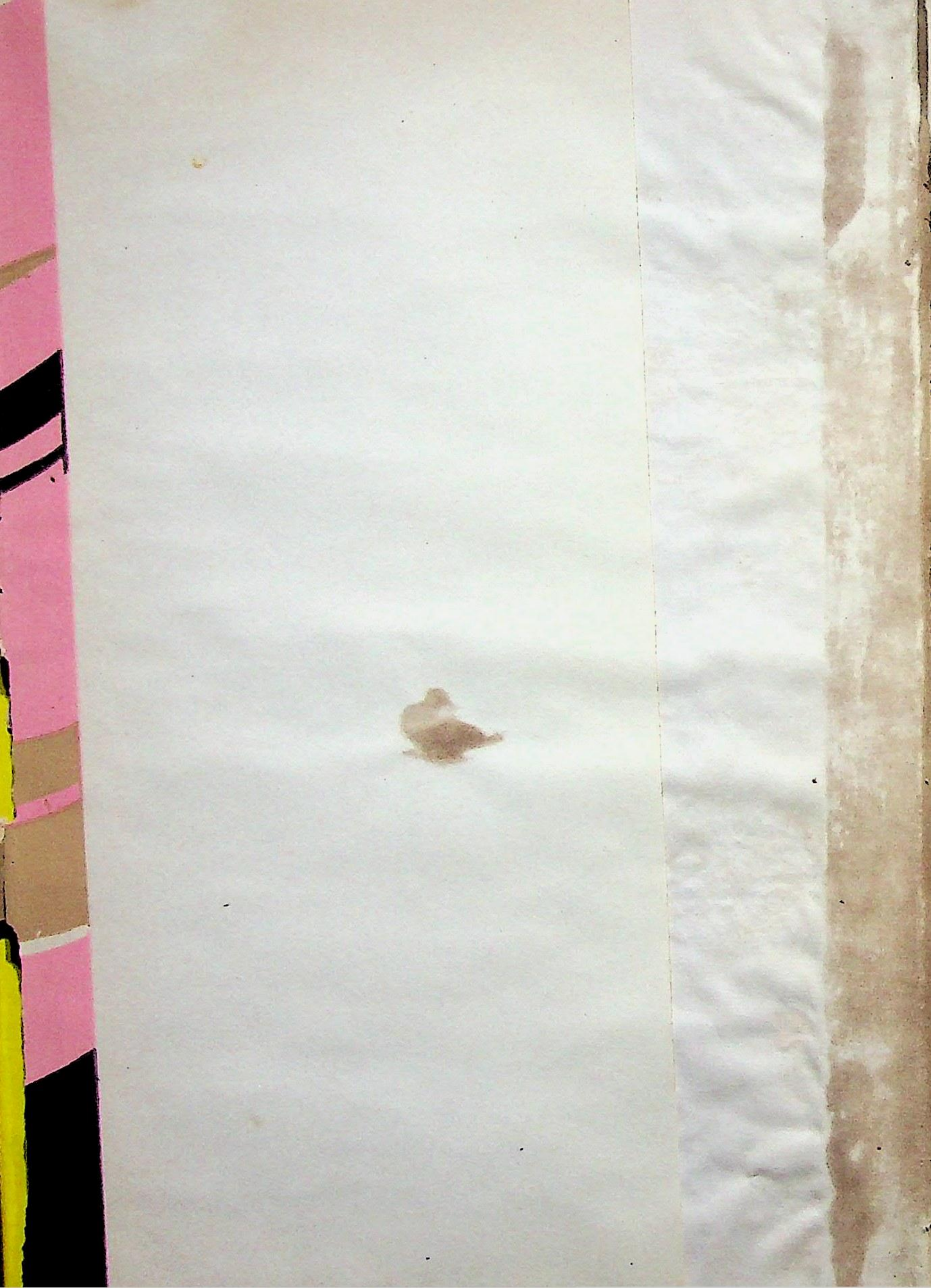
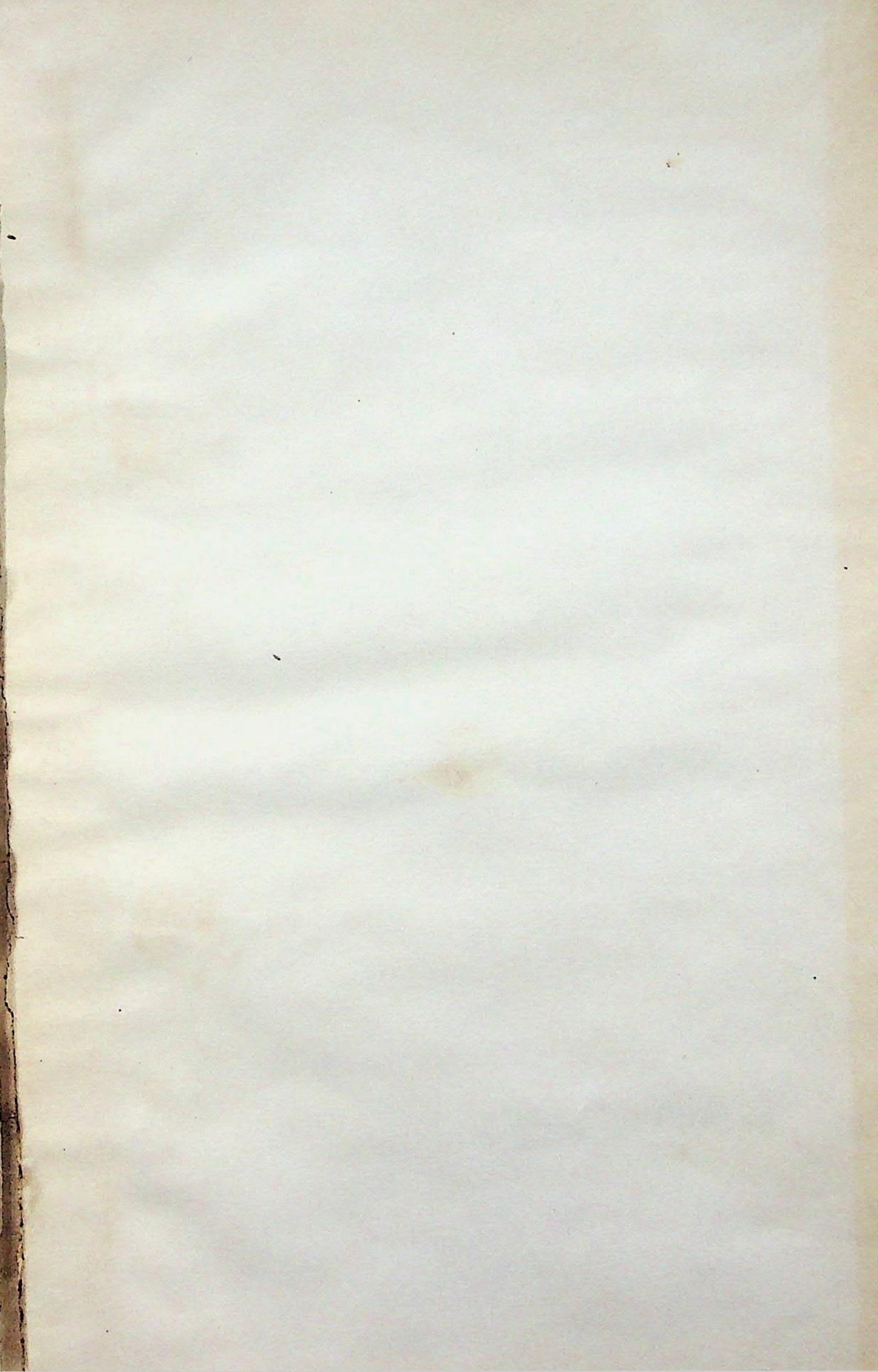
हमारा साहित्य

सम्पादक :

नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी
जम्मू - कश्मीर,
जम्मू

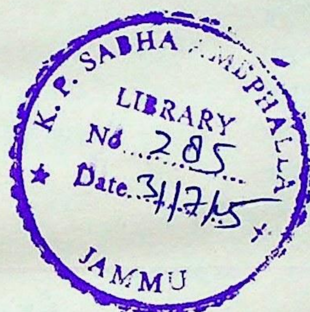




हमारा साहित्य



हमारा साहित्य


K. P. SABHA AMBPHALLA
LIBRARY
No. 285
Date 31.7.75
JAMMU

(१९६५)

सम्पादक
नरेन्द्र खजूरिया

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, जम्मू व कश्मीर, जम्मू

मूल्य : ५.४०



सैक्रेटरी, द्वारा ललितकला,
संस्कृति व साहित्य अकादमी,
जम्मू-कश्मीर के लिए प्रकाशित
तथा
ऐम० सी० हांडा ब्रादर्ज़
योगेश प्रैस, जालन्धर शहर में मुद्रित ।

हमारा साहित्य

कथा-साहित्य

हास्य व्यंग्य

काव्य-धारा

लेख

हमारा साहित्य

राज्य की ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी के वार्षिक (हिन्दी) प्रकाशन, 'हमारा साहित्य' का दूसरा संकलन प्रस्तुत है। ऐसे संकलनों को सर्वांगपूर्ण बनाना प्रायः कठिन कार्य होता है। यह बात प्रस्तुत संग्रह के संदर्भ में तो और भी सत्य है।

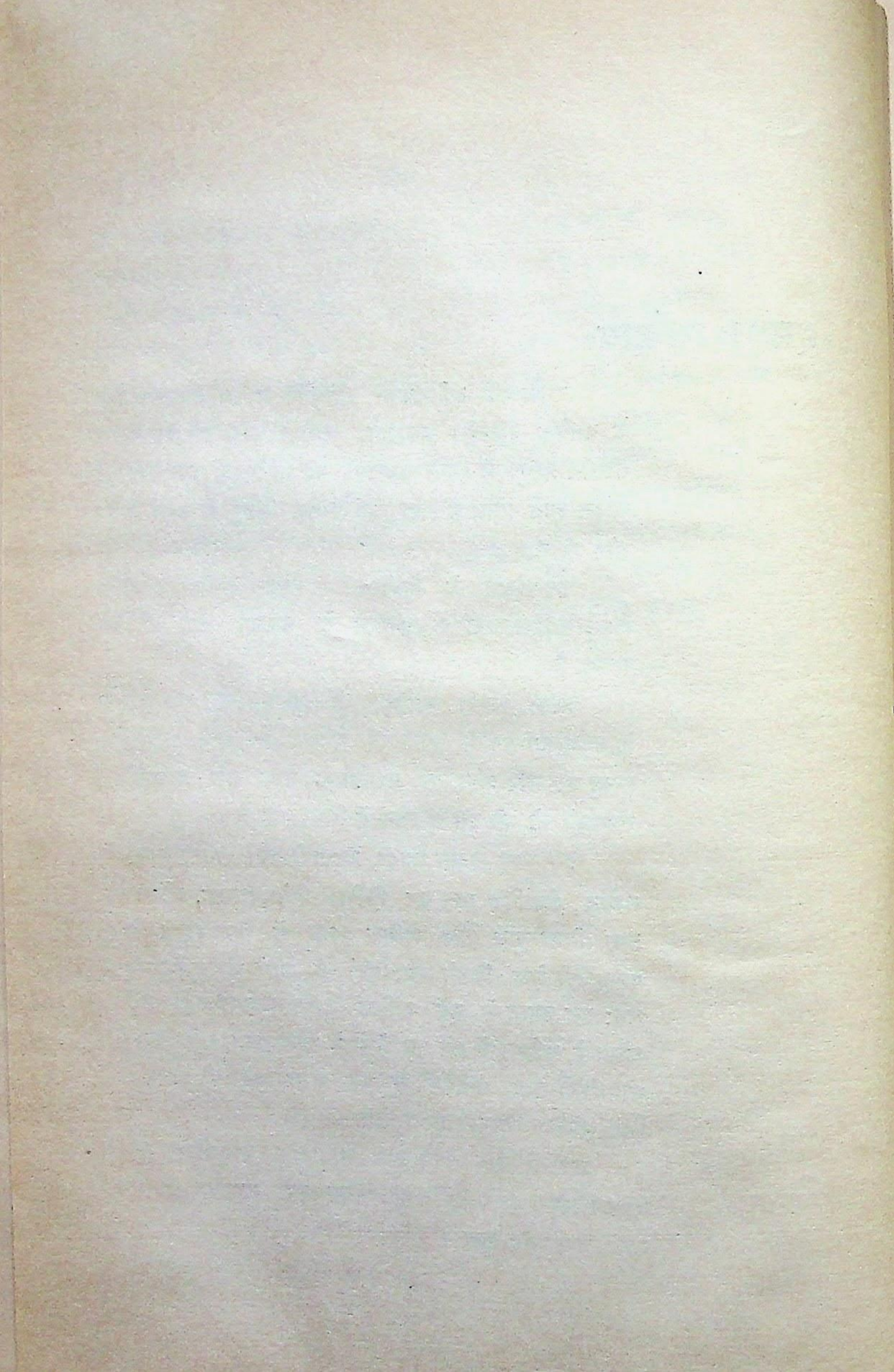
इस संकलन के नियोजन में हमारा अभीष्ट राज्य के हिन्दी-साहित्यकारों के कृतित्व से पाठकों को परिचित कराना है।

प्राय: 'हमारा साहित्य' में हम प्रकाशित रचनाओं में से अपेक्षाकृत स्थायी मूल्य की कृतियों का चयन करते हैं। परन्तु इस बार प्रकाशित सामग्री के साथ कुछ अप्रकाशित रचनाओं को भी इस संकलन में लिया गया है।

इस संग्रह में हम हिन्दी, कश्मीरी तथा डोगरी भाषाओं सम्बद्ध, वैज्ञानिक स्तर पर लिखित विवेचनात्मक, शोधपरक तथा विचारपूर्ण लेख अधिक मात्रा में देना चाहते थे। परन्तु ऐसे लेख जितने महत्त्वपूर्ण हैं उतने ही दुर्लभ भी। अत: इस प्रयत्न में हमें वांछित सफलता प्राप्त नहीं हुई। आशा है, भविष्य में हमें इन क्षेत्रों में रुचि रखने वाले विद्वानों भाषाविदों तथा अन्वेषकों से इस अभाव को दूर करने के लिए अपेक्षित सहयोग प्राप्त होगा।

अन्त में, हम अपने सभी साहित्यिक बन्धुओं के प्रति आभार प्रकट करते हैं; जिनके रचनात्मक सहयोग से यह आयोजन सम्पन्न हुआ।

नरेन्द्र खजूरिया



कथा-साहित्य

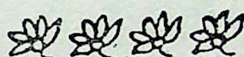
- वेद राही
- श्री हरिकृष्ण कौल
- ठाकुर पुंछी
- मोहन यावर
- पुष्करनाथ
- चंचल शर्मा
- नरेन्द्र खजूरिया

हास्य-व्यंग्य

- घनश्याम सेठी

दरार

वेद 'राही'



सब भाग रहे हैं। किसी के सिर पर कोई गठरी है, किसी के हाथ में कोई टूटा-फूटा बक्सा।

"भागो, दौड़ो!"

"हाय! यह क्या हो गया?"

"हे भगवान्!"

बच्चे साथ-साथ घिसटते चले जा रहे हैं। छम्ब की ओर से आती हुई गोलों की आवाजें दिलों को दहलाए दे रही हैं।

ध्यानसिंह दहलीज़ पर खड़ा भागते लोगों को देखे जा रहा है। इस भगदड़ में उसे कुछ भी सुझाई नहीं दे रहा। उसे लगता है, सारी दुनिया घूम रही है और वह एक ही जगह स्थिर खड़ा है।

कोठे के भीतर से लज्या की कराहट सुनाई दे रही है। दर्द की तीव्रता से अकड़ा और पीला पड़ा हुआ उस का चेहरा ध्यानसिंह की आंखों में घूमने लगता है। भीतर-ही-भीतर उसे कुछ काटता चला जाता है।

सामने मुरकू चाचू एक बक्सा सिर पर उठाए हड़बड़ाता हुआ गुजरा। पीछे-पीछे चाची भी है, एक गठरी उठाए हुए। उस की सहमी हुई आंखों में से आंसू भी बह रहे हैं।

"अरे ध्यानू! क्या बात है? चलो, चलो जल्दी करो," मुरकू चाचू ने सिर पर उठाए बक्स को सम्भालते हुए कहा।

"बस, आ रहा हूं, तुम चलो," ध्यानसिंह ने उत्तर दिया।

उसी समय साथ वाले घर से रामू शाह निकला—'अरे, ध्यानू! खड़े क्या हो? चलो भाई!"

"तुम चलो शाह, मैं आ रहा हूं।"

शाह के सिर पर एक बड़ा-सा गट्ठर है। उस की पत्नी ने भी एक बक्सा उठा रखा है। दो बच्चों ने एक-एक गठरी उठा रखी है। बड़ा लड़का रस्सी पकड़े गाय को भी घसीटने का यत्न कर रहा है। वे लोग भी आगे जा कर मोड़ पर गुम हो गए।

ध्यानसिंह सोच रहा है—इस समय किसी को भी अपनी स्थिति बताना व्यर्थ है।

रात तो सब ठीक था। सब उसी तरह सोए थे, जैसे हर रोज सोते हैं। बल्कि कल रात कुछ ज्यादा ही शांति थी। खाना खाने के थोड़ी देर बाद वह रोज की तरह बिस्तर पर आ लेटा था और लज्या भी।

"सुनो," ध्यानसिंह ने करवट बदल कर कहा।

"सो जाओ अब, मुझे नींद आ रही है," लज्या ने कसमसा कर उस की ओर पीठ कर ली।

"अरे, बात तो सुनो," कहते हुए ध्यानसिंह ने उस के पेट पर हाथ रख दिया। लज्या की नस-नस में एक तार खिंचा—खिंचता गया, फिर एकाएक झनझना उठा।

उसे सचमुच बहुत अच्छा लगता है लज्या के उभरे हुए पेट पर हाथ रख देना। घड़े के समान उभरा हुआ पेट, लगता है, पशमीने का ढेर है हाथ जैसे फिसलता चला जा रहा है और लज्या को लग रहा है, उस के अंग-प्रत्यंग से सोते फूट रहे हैं। वह उन सोतों में बही जा रही है।

"अरे!" एकाएक ध्यानसिंह ने अपना हाथ उठा लिया।

लज्या खिलखिला कर हंस पड़ी। मुंह पर हाथ रख कर उस ने अपनी हंसी घर के बाहर जाने से रोकी।

"वह हिलने लगा था।"

"हां!" लज्या बोली—"तुम्हारा हाथ लगने से वह जाग पड़ा है। अब सुला भी दो न, बहुत कुलबुला रहा है।"

"न बाबा, मुझे तो डर लगता है," कहते हुए उस ने करवट बदल ली।

लज्या की मद्‌धिम हंसी की गूंज देर तक उस कमरे में गूंजती रही। उस गूंज की लय में बहता हुआ ध्यानसिंह सो गया था।

कुछ घंटों बाद वह फिर जागा था। उसे प्यास लगी थी। अन्धेरे में उस ने पीछे मुड़ कर देखा, लज्या का गोरा चेहरा जैसे चमक-सा रहा था। एक बार उस का जी चाहा, वह उस के चेहरे पर अपना मुंह रख दे। जाग पड़ेगी, सोच कर वह केवल देखता ही रहा। फिर वह उठा और घड़े में से पानी उंड़ेल कर उस ने पीया। पानी पी कर वह आंगन में आ खड़ा हुआ। बड़ी निस्तब्ध रात थी। उस ने चारों तरफ घूम कर देखा, हर चीज पर एक गहरा सन्नाटा छाया हुआ।

पता नहीं कितनी देर हुई थी उसे दोबारा सोए हुए। वह हड़बड़ा कर उठा। लज्या उसे झंझोड़ रही थी।

"अरे! उठो! देखो तो सही, ये कैसी आवाजें हैं। मुझे लगता है, तोपें गरज रही हैं।"

"ये तो बादल गरज रहे हैं," कहते हुए वह खड़ा हो गया। साथ ही उसे याद आया, थोड़ी देर पहले वह उठ कर बाहर गया था, तब आसमान बिल्कुल साफ था, पर निस्तब्धता की चादरें फट चुकी थीं। सचमुच कहीं तोपों के दहाने खुल गए थे। पर कहां? वह छत पर दौड़ा। पश्चिम में, छम्ब की ओर आग के गोले फटते हुए साफ दिखाई दे रहे थे। मीलों दूर से भी बारूद की आग का भयानक रूप दिखाई दे रहा था। दिल दहशत से दहलने लगा। दूसरे लोग भी अपने-अपने कोठों के ऊपर चढ़े हुए थे।

"यह क्या हो गया, लम्बरदार?" ध्यानसिंह ने जोर से आवाज दी। लम्बरदार गुलाबसिंह का कोठा दो घर छोड़ कर ही था।

"लगता है, पाकिस्तान ने हमला कर दिया। तोपों की मार मार रहे हैं," गुलाबसिंह ने कहा।

"हां, गोलों का रुख उसी ओर से है," पंडित दीनदयाल भी बोल उठा, जिस का घर लम्बरदार के घर के सामने ही था।

"हमारी तोपें भी तो चल रही होंगी?" ध्यानसिंह यों बोला, जैसे वह आश्वासन पाना चाहता हो कि खतरे की कोई बात नहीं है।

"ऐसा लगता तो नहीं है," लम्बरदार ने छम्ब की ओर देखते हुए कहा— "या हमारी ओर से इतने कम गोले चल रहे हैं कि दूर से नज़र नहीं आते।"

"चलो, सब जनें दुकानों के पास इकट्ठे हो जाएं," लम्बरदार ने जैसे आदेश-सा दिया।

ध्यानसिंह नीचे उतरा तो लज्या ने उस का हाथ थाम लिया, ''सचमुच हल्ला हो गया है ?''

''तुम घबराओ मत, जा कर सो जाओ,'' कहते हुए ध्यानसिंह उसे भीतर ले आया और खाट पर लिटा कर एक रजाई दे दी। मुड़ते-मुड़ते उस को एक चिकोटी भी काट ली।

''यह क्या कर रहे हो ?'' लज्या कुछ खिन्न होने लगी थी।

''चुपचाप सो जाओ, कोई चिन्ता मत करो,'' कहता हुआ वह बाहर निकल गया।

गांव में ये ही दो दुकानें हैं। सभी मर्द वहां एकत्र हो गए। दूनी शाह के हाथ में एक मद्धिम-सी लालटेन है। किसी का चेहरा स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा। फिर भी एक दूसरे के चेहरे पर उड़ती हुई हवाइयों का आभास सब को है।

कोई निर्णय नहीं हो सका कि क्या करें। दुकानों की छत पर चढ़ कर भी कई बार देखा गया। स्पष्ट दीखता था कि आक्रमणकारी आगे बढ़ रहे हैं। गोलों की मार पश्चिम से उत्तर की ओर बढ़ती चली जा रही थी। धमाकों से दीवारें हिलने लगी थीं।

सुबह होने को आ गई। गांव का कोई मुर्गा भी नहीं बोला। स्त्रियां भी गलियों में दो-दो, चार-चार इकट्ठी होने लगीं। बच्चे भी उन के पीछे-पीछे थे, बातें सुनने को उत्सुक। पौ फटने के बाद की रोशनी फैल गई थी।

अचानक दुकानों के पास खड़े मर्दों ने देखा, गौड़से गांव की ओर से लोगों का रेला बढ़ा चला आ रहा है। एक भयानक शोर उन के साथ-साथ आ रहा था। किसी बड़े बरसाती नाले में जैसे एकाएक बाढ़ आ गई हो।

टूटी हुई पतंग की तरह ध्यानसिंह का दिल नीचे आने लगा। वह भी लम्बरदार के पीछे-पीछे आगे बढ़ा। पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों का वह रेला गांव के पास पहुंच गया था। खेतों के बीचों-बीच, मेड़ों पर लोग-ही-लोग। सब परेशान। यह क्या हो रहा है ?

''भागो ! भागो।''

''पाकिस्तान ने हमला कर दिया।''

''टैंक-ही टैंक।''

''आग-ही-आग।''

''दौड़ो !''

"भागो।"

भगदड़ मच गई। सब के हाथ-पांव फूल गए। एक ऐसा शोर, जो कभी नहीं सुना था किसी ने। किसी को यह भी मालूम नही पड़ रहा, उसके मुंह से क्या निकल रहा है।

"चलो! चलो! जल्दी करो!"

"जो भी हाथ में आता है, ले कर भागो!"

"अब कुछ भी मत सोचो।"

"पहले औरतों और बच्चों को निकालो।"

"मर्द बाद में सामान ले कर चलें।"

"भागो! दौड़ो!"

सब अपने-अपने घरों की ओर भागे। ध्यानसिंह को भी, भागते हुए, कुछ नज़र नहीं आ रहा था, आगे क्या है।

भिड़े हुए दरवाजे को भड़ाक से खोलता हुआ वह आंगन में कूदा—

"चलो, चलो, जल्दी करो।"

"मैं नहीं जा सकती," वह बोली।

ध्यानसिंह उस की ओर देख कर स्तब्ध रहा।

"क्या हो गया है तुम्हें?"

"पेट में दर्द होने लगा है। मैं अब नहीं जा सकूंगी," लज्या ने कहा और खाट पर लेट गई। पेट को थामती हुई कराहने-सी लगी।

"वही दर्द तो नहीं?"

"हां।"

"मैं अभी छज्जू की मां को बुला कर लाता हूं" कह कर वह तेजी से बाहर निकला। शंका थी, कहीं छज्जू की मां गांव छोड़ कर जा न चुकी हो। वही तो एक औरत है जो यह काम कर सकती है। गलियों में गौड़से गांव की तरफ से आते हुए लोग भागे चले जा रहे थे।

ध्यानसिंह जब छज्जू के घर के बाहर पहुंचा, तब वह और उस की मां एक-एक गठरी सिर पर रखे घर से बाहर निकल रहे थे। दूर से उन्हें देख कर वह ठिठक गया। कैसे कहेगा कि लज्या को........।

"ओ ध्यानू! यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हो?" छज्जू की मां ने उसी की

ओर आते हुए कहा और यह कहने के साथ ही वह रुक गई। मन में शंका सी उठी। अर्थमय दृष्टि से ध्यानसिंह की ओर देखा।

"मासी! लज्या को... " वह इतना ही कह सका।

"मर गए," छज्जू की मां भयभीत हो गई—"पीड़ा होने लगी?"

"हां, मासी!" ध्यानसिंह के लहजे में बेचारगी भरी थी।

"चलो, चलो, उसे मेरे साथ ले कर चलो। गांव से तो किसी तरह निकलें। रास्ते में सब सम्भाल लूंगी मैं। चिन्ता मत करो," कहती हुई छज्जू की मां आगे बढ चली। उस के दोनों हाथ सिर पर रखी हुई गठरी पर थे और नज़र आगे बढ़ती उस गली पर, जो तंग और कीचड़ से भरी हुई थी। छज्जू और ध्यानसिंह दोनों उसके पीछे-पीछे चलने लगे। छज्जू की मां, न जाने क्यों, कीचड़ से बचने की बजाए उसके बीच छप छपाक छप चल रही थी। एक बड़े धमाके की आवाज आई तो वह फुट भर ऊपर उछल पड़ी और बड़ी मुश्किल से गिरते-गिरते बची। ध्यानसिंह चलते-चलते रुक गया। उसे महसूस हुआ, दिल की धड़कन ही रुक गई है।

"जाओ ध्यानू, बहू को ले आओ, हम यहां तब तक ठहरते हैं।" छज्जू की मां ने कहा।

"अन्दर आ जाओ, मासी।"

"नहीं, नहीं, तुम उसे ले आओ। देर करने से कोई लाभ नहीं।"

घर के भीतर जाते हुए ध्यानसिंह ने गहरे अविश्वास के साथ उन की ओर देखा।

वह लज्या के पास पहुंचा। लज्या खाट पर चित पड़ी थी। उसका चेहरा विकृत हो गया था। खाट की अदवान में फंसे उसके पांव संघर्ष कर रहे थे। दोनों भुजाएं फैला कर वह जोर से मुट्ठियां भींच रही थी। दांतों के बीच ऊपर का होंठ उस ने यों दबा रखा था, जैसे कट ही जाएगा। 'हाय, हाय!' की आवाज़ मुंह से बाहर आते-आते एक तेज़ और लम्बी फूत्कार में बदल जाती। दरवाज़े के खड़ाक् की आवाज सुन कर उस ने उधर देखा।

ध्यानसिंह उसके चेहरे का रंग देख कर घबरा गया। धीरे-धीरे आगे बढ़ कर वह उस के सिरहाने बैठ गया। उस ने लज्या के सिर पर हाथ रखा। वह अपने दोनों हाथों में उसका हाथ लेकर जोर से दबाने लगी।

"छज्जू की मां आई या नहीं?" उसने टूटते शब्दों में पूछा।

"वह बाहर खड़ी है," ध्यानसिंह ने उस के माथे पर हाथ फेरते हुए हलके स्वर में कहा।

"हाय......उसे जल्दी से बुलाओ। जल्दी बुलाओ। उसे कहो, जल्दी आए, मैं मर रही हूं। बचूंगी नहीं! हाय-हाय!"

"मैं तुम्हें उठा कर ले चलता हूं लज्या। छज्जू की मां कह रही है, गांव से निकल चलो।"

"अरे, क्या हो गया है तुम लोगों को? रास्ते में ही कुछ हो गया तो?" लज्या कराहते हुए बोली, "मैं कहती हूं, उसे बुलाओ। मुझे कैसे उठा कर ले चलोगे? जाओ, उसे यहां ले आओ, जाओ।" इस बार वह चीख पड़ी। लज्या और भी अधिक छट-पटाने लगी थी।

ध्यानसिंह उठा, बाहर आया। देखा, न छज्जू वहाँ है, न छज्जू की मां। उसका दिल धक् से रह गया। क्षण भर के लिए उस की आंखें मुंद गईं। उसे चारों ओर गिद्ध मंडराते नज़र आने लगे। घबरा कर उसने आंखें खोल दीं।

"आ गई?" लज्या ने उसे देखते ही पूछा।

"नहीं, वह चली गई है," ध्यानसिंह पास बैठता हुआ बोला।

"ओह! मेरी मां!" वह चीखी, "अब क्या करूं!"

ध्यानसिंह ने धीरे-से उसका हाथ दबाने की कोशिश की।

"छोड़ दो मुझे, अकेली छोड़ दो। तुम भी चले जाओ। तुम भी चले जाओ यहां से।"

"नहीं लज्या, अब भी समय है। इस गांव से हम निकल जाएं तो खतरा बहुत कम रह जाएगा। मैं तुम्हें उठा कर ले चलता हूं।"

"नहीं! नहीं! नहीं!" वह फिर चीखी, "मैं नहीं जा सकती। चाहे कितना भी खतरा हो, मैं रास्ते में बच्चा नहीं जन सकती, समझे? चले जाओ, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, तुम भी चले जाओ।"

"मैं तुम्हें अच्छी तरह उठा कर ले चलता हूं। दो-तीन घंटों में चिनाब के किनारे पहुंच जाएंगे। वहां हम खतरे से बाहर होंगे। चलो, आओ मैं तुम्हें ऐसे उठाता हूं......"

"छोड़ दो मुझे!" लज्या ने उसका हाथ झटक कर परे कर दिया, "मैं

कह चुकी हूं, मैं खुले में बच्चा नहीं जन सकती। चले जाओ यहां से! मुझे जीना होगा तो बच जाऊंगी। मरना होगा तो......''

"कैसी बातें कर रही हो, लज्या?'' ध्यानसिंह फिर बैठ गया—"मैं तुम्हें छोड़ कर कैसे जा सकता हूं?''

उसी समय एक बहुत बड़ा धमाका हुआ। शायद कहीं गांव के पास ही कोई गोला आ कर फटा था। कोठे की कच्ची दीवारें हिल गईं। लज्या ने अनायास दोनों हाथों से ध्यानसिंह को थाम लिया। ध्यानसिंह ने भी उस की दोनों बाहें जकड लीं।

"हाय!'' लज्या अचानक जोर से कराही, जैसे भीतर-ही-भीतर उसे किसी ने नुकीले शिकंजे में कस लिया हो।

ध्यानसिंह घबरा कर उठ खड़ा हुआ।

"बाहर चले जाओ। जाओ, जाओ!'' वह इतने जोर से चीखी कि ध्यानसिंह मूढ़-सा दरवाजे की ओर चल दिया। लज्या और भी जोर से मुट्ठियां भींचने लगी। खाट की अदवान में फंसे हुए उस के पांव और भी अकड़ते जा रहे थे। उस की आंखों से आंसू रिसने लगे थे।

वह बाहर आया। गली में बांकू चमार अपनी पत्नी के साथ भागा जा रहा था। दोनों के सिर पर भारी गठरियां थीं। पत्नी ने घूंघट भी निकाला हुआ था।

"अरे, ध्यानू! जल्दी कर। चल! अब तो लगता है, इस तरफ भी तोपों के मुंह खुल गए।''

"तुम चलो बांकू, मैं भी आ ही रहा हूं।''

इस समय भला उस के लिए कौन रुकेगा? वह जानता है। किसी से कुछ कहना ही व्यर्थ है। भीतर से लज्या की कराहट धीमी हो गई थी। वह फिर से भीतर जा, उसके पास खड़ा हो गया। लज्या का तड़पना कुछ कम हो गया था। आंखें बन्द किए वह कसे हुए सांस ले रही थी। लगता था, तकलीफ की अवधि बढ़ गई है। वह कितनी ही देर वहां खड़ा उसे देखता रहा।

एकाएक उसे लगा कि गोलों की आवाजें बहुत बढ़ गई हैं। वह पीछे हटा, फिर दरवाजा खोल कर बाहर आ गया।

लोग वैसे ही भागे जा रहे थे। दूसरे गांवों के लोग तो कब के निकल चुके थे। यहां के भी इक्का दुक्का लोग ही थे जो अब भाग रहे थे। वह ठीक

दहलीज में आ खड़ा हुआ। उसे कुछ सुझाई न दे रहा था। उसे लग रहा था दुनिया घूम रही है और वह एक ही जगह स्थिर खड़ा है।

वह छत पर आ चढ़ा। इस तरह निरन्तर तोपों की गड़गड़ाहट उसने कभी सुनी नहीं थी। उस तरफ आकाश पर धुआं-ही धुआं उड़ रहा है......काला स्याह धुआं। लगता है गौड़से गांव तक तो आक्रमणकारी बढ़ ही आए हैं।

वह फिर नीचे उतर आया। भिड़े हुए दरवाजे से कान लगा कर उस ने सुना, लज्या धीरे-धीरे कराह रही है। वहां से हट कर वह गली में आ गया। अब वहां कोई दिखाई नहीं दे रहा। सब भाग गए हैं। वह हैरान हुआ यह देख कर कि गली में कहीं कोई कुत्ता भी नहीं है। गांव वालों के साथ वे भी भाग गए हैं। उसे ख्याल आया, स्वयं वह कभी नहीं भाग सकता। चिड़ियों का एक बहुत बड़ा झुण्ड उसे अखनूर की ओर उड़ता नज़र आया। वे भी तोपों के धमाकों से पनाह मांग रही थीं। दो बिल्लियां, एक केसरिया रंग की और दूसरी काली-चिट्टी, उसे एक मकान में जाती दिखाई दीं। दरवाजा बन्द पा कर वे रोशनदान की मोरी से भीतर कूद गईं। 'कमरे के अंधेरे में उन्होंने अपने-आप को सुरक्षित समझ लिया होगा,' ध्यानसिंह ने सोचा। उसे अचानक ख्याल आया, शायद लज्या को भी इसीलिए परिस्थिति की भयानकता का अनुमान नहीं कि वह कमरे के भीतर बन्द है और......और अपने कष्ट में लाचार हुई बैठी है।

गलियों में घूमते हुए उसे भय ने जकड़ लिया है। सुनसान आंगनों और बन्द दरवाजों में उसे काली-काली परछाइयां रेंगती नज़र आने लगी हैं। उस की गति में आप-ही-आप तेजी आने लगी है। नहीं मालूम; वह क्यों, कहां चला जा रहा है। उस के पांव कीचड़ में सन गए हैं। कीचड़ के छींटे उस के पाजामे और कुर्ते पर भी पड़ते जा रहे हैं।

यह दौलू का कोठा है। अभी पिछले ही बरस उस ने सारे कोठे की लिपाई-पुताई की थी। वह फिर भी भाग गया है।

यह नानकसिंह का घर है। नानकसिंह की बेटी रानो ध्यानसिंह पर मरती थी। वह भी भाग गई है। उस ने भी जाते हुए नहीं सोचा, ध्यानसिंह कहां है

अब वह दुर्गी ताई के कोठे के आगे से गुजर रहा है। दुर्गी ताई बुढ़ापे और लकवे से तंग आ कर कहा करती थी—'न जाने मुझे मौत कब आएगी! मुझे तो अब यमराज का ही इन्तजार है।' वह भी भाग गई है, न जाने किस के कंधे पर सवार हो कर।

यह किरपू शाह का घर है। शाहनी ध्यानसिंह की मां की पक्की सहेली थी।

यह चम्पा डोमनी का कोठा।

यह रुल्दू स्याने का थड़ा है।

सब वीरान !

ध्यानसिंह तेजी से गुजरता जा रहा है।......अचानक वह रुक गया।

गली के सिरे पर आ कर उसने एकाएक दूर खेतों के पास छह-सात बड़े-बड़े कुत्तों को भाग कर आते देखा। उसका दिल दहल गया। क्षण भर के लिए उसकी चेतना ही जैसे लुप्त हो गई। फिर अविलम्ब दौड़ कर वह रुल्दू स्याने के थड़े के पीछे छिप गया। उस की सांस जोर से चलने लगी। कुत्तों के भौंकने की आवाज़ जैसे-जैसे पास आती जा रही है, दिल की धड़कन भी तेज हो रही है। थड़े के पीछे से उसने सिर उठा कर देखा, कुत्ते काफी पास आ चुके हैं। वह और भी नीचे दुबक गया। कुत्ते जब गुजर गए और उन की आवाज़ दूर से दूरतर होती गई तब ध्यानसिंह उठ बैठा उठते ही उस ने बेतहाशा घर की ओर भागना शुरु कर दिया।

"चलो ! चलो ! चलो !" उस ने वैसी तेजी ही से कमरे में घुसते हुए कहा।

पीड़ा के कसाव में टूटी हुई लज्या उस की सूरत देख कर कांप उठी।

"पाकिस्तानी आ गए ?"

"बस, आ ही गए समझो ! उन की तोपों के गोले पारले जंगल तक पड़ने लगे हैं। उधर से कुत्ते भी भागते चले आ रहे हैं। ईश्वर के लिए अब तुम भी चल पड़ो। चलो लज्या ! तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूं। चलो, मैं उठा लेता हूं तुम्हें।" कहते हुए वह लज्या पर झुक गया।

लज्या को लगा, ध्यानसिंह रो रहा है। वह एकटक देखने लगी। जब ध्यानसिंह ने अपनी एक बांह उसकी गर्दन में और एक घुटनों के नीचे डाली तो वह तब भी देखती ही रही। बोली कुछ नहीं।

अभी ध्यानसिंह ने उसे जरा-सा ही उठाया होगा कि लज्या के मुंह से चीख निकल गई। ध्यानसिंह ने घबरा कर उसे छोड़ दिया। वह फिर चित जा पड़ी।

"हाय ! ओ मां ! मैं अब नहीं बच सकती। मर ही जाऊं तो अच्छा।

तुम चले जाओ। मुझे अकेला छोड़ जाओ," लज्या ने फिर यों तड़पना शुरु कर दिया, जैसे उसे भीतर-ही-भीतर कोई तोड़ रहा हो।

ध्यानसिंह फिर गली में आ गया। गोलों के धमाके अब बहुत ही नज़दीक हैं। उसे लग रहा है, अब गाँव के कोठों पर ही गोले गिर रहे हैं। पांवों के नीचे धरती में थरथराहट का अहसास होने लगा है। उसे धुआं भी उठता दिखाई देने लगा है, जैसे मकानों में आग लग गई हो उसे के कदमों में आप-ही-आप एक हरकत-सी हुई। अचानक उसे कुत्तों के भौंकने की आवाजें आने लगी। गोया हजारों जंगली कुत्ते गांव की ओर लपक रहे हों।

उस ने भागना शुरू कर दिया।

वह उसी रास्ते से भाग रहा है, जहां से सुबह सारे गांव के लोग अखनूर की तरफ भागे थे। उसके पांव कहीं भी नहीं रुक रहे। कई जगह पांव के नीचे कोई पत्थर फिसला गया और वह लुढ़का, पर फौरन सम्भला और फिर भागा। कई जगह उसका कुर्ता झाड़ियों में उलझा, पर उस ने परवाह न की। वह दौड़ता ही चला गया। गोलों के धमाके उसे अपनी पीठ पर लगते महसूस हो रहे हैं और जंगली कुत्तों के दांत एड़ियों पर मानो गड़ने ही वाले हैं। वह फिर भी भाग रहा है। मीलों भाग कर जब वह बेदम हो गया तब एक तरफ गिर पड़ा। वह रो रहा था पर उस की आंखों में आंसू नहीं थे।

चलते-चलते वह चिनाब के किनारे पहुंच गया। शाम हो गई है। फूटते गोलों के धमाके बराबर उस के पीछे लगे हुए हैं। कुत्तों की आवाजें बहुत पीछे रह गई हैं। पानी से जरा दूर एक बड़े पत्थर पर वह बैठ गया है। चिनाब की बड़ी-बड़ी लहरें, उसे लग रहा है, उस का सब कुछ बहा कर ले गई हैं।

रात हो गई। वह पत्थर पर बुत की तरह निश्चल बैठा है। न कुछ देख रहा है, न सुन रहा है। न उसे कुछ याद आ रहा है। काफी रात गए वहां बैठे-बैठे वह आप-ही-आप एक ओर लुढ़कने लगा। उसने अपने-आप को सम्भालने का यत्न नहीं किया। जैसे गिरा वैसे ही पड़ा रहा। अपलक आंखें आकाश की ओर खुली हैं, पर उसे कुछ नजर नहीं आ रहा।

सुबह फैल गई। अपने अवयवों में उसे लहू दौड़ता महसूस होने लगा। उसे बहुत-कुछ याद आने लगा। वह उठ कर बैठ गया। उसने चिनाब के बहते पानी की ओर देखा। गोलों की आवाजें भी उसके कानों में पड़ने लगीं। इस समय गांव में दुश्मनों का डेरा होगा, सोच कर उसके रोंगटे

खड़े हो गए। लज्या का ख्याल आया और साथ ही उस के उभरे हुए पेट का। वह जरा-जरा देर बाद अपने बाल नोचने लगा।

अब वह अखनूर की तरफ देखने की बजाए पीछे 'अपने गांव की ओर देख रहा है। उस तरफ से दो पुलिस के सिपाही तेज कदमों से आते दिखाई दिए। उनके कंधों पर बन्दूकें हैं।

"आप कहां से आ रहे हैं ?" ध्यानसिंह ने आगे बढ़ कर पूछा।

"गौड़से की तरफ से," एक सिपाही ने उत्तर दिया।

"तुम्हें यहां नहीं ठहरना चाहिए," दूसरा सिपाही बोला—"हमारे साथ अखनूर की तरफ चले चलो।"

"मुझे अपनी बीवी का इन्तजार है। वह पीछे रह गई है।" ध्यानसिंह ने कहा।

दोनों सिपाही चौंके।

"हमें तो रास्ते में कोई औरत नहीं मिली," पहले वाला ही सिपाही बोला।

"इस तरफ कहां तक आए हैं पाकिस्तानी ?" ध्यानसिंह ने पूछा।

"वे सीधे छम्ब की ओर बढ़ गए। इस तरफ नहीं आए।"

"पारले जंगल तक ?"

"नहीं, वहां तक भी नहीं। वैसे कुछ पता नहीं......वे कब किस तरफ चढ़ आएं।"

सिपाहियों के जाने के बाद ध्यानसिंह ने बिना किसी इरादे के गांव की ओर चलना शुरू कर दिया। पहले तो वह धीरे-धीरे चला, फिर आप-ही-आप उस के कदमों में तेजी आ गई। उस की सांस तेज चलने लगी। शरीर पसीने में भीग गया। दम लेने के लिए भी वह कहीं रुकना नहीं चाहता। ज्यों ही दूर ... दरख्तों के पीछे, गांव के कुछ घर दिखाई दिए, उसने भागना शुरू कर दिया। गांव के सूने पड़े मैदान के ठीक बीच से वह तीर की तरह गुज़र गया। खाली पड़ी दुकानों की ओर भी उस ने नहीं देखा। कीचड़-भरी गलियों में छपाक-छपाक दौड़ता हुआ वह घर के दरवाजे पर पहुंचा और एकाएक रुक गया।

कोई आवाज नहीं आ रही अन्दर से। कमजोर और बोझिल पांवों से धीरे-धीरे वह आंगन में पहुंचा। उसने दरवाजे से कान लगा कर सुना; कोई आवाज़, कोई खटका नहीं। शिराओं को मुर्दा कर देने वाला भय नीचे से ऊपर

तक सरसरा गया कांपते हाथों से उसने दरवाजे को जरा-सा धकेला। दरवाजा बन्द था। एक हल्की-सी उम्मीद हुई। दुविधा भी हुई। धीरे-से दरवाज़े पर ठक-ठक किया। भीतर कुछ खटका हुआ। ध्यानसिंह को असहनीय कुतूहल ने बेचैन कर दिया। दो मिनट बाद दरवाज़ा खुला। लज्या ने उसे देखा उसने लज्या को। दोनों कुछ बोल नहीं पाए।

लज्या सीधे खाट पर जा कर बैठ गई। उसकी चाल से लगा वह निढाल है। हाथ बढ़ा कर उस ने एक कपड़ा सरकाया। बच्चे का मुंह नज़र आने लगा। ध्यानसिंह अकारण ही बच्चे को देख कर हैरान है।

लज्या ने कहा—"रात को हुआ। मैंने ख़ुद ही सब कुछ कर लिया।"

ध्यानसिंह वैसे ही निश्चल पड़ा, एकटक बच्चे को देखे जा रहा है। लज्या ने उसकी ओर मुंह उठा कर फिर कहा—"पास आओ न। इतनी दूर खड़े-खड़े क्या देख रहे हो?"

ध्यानसिंह चौंका।

"अरे, जल्दी करो! उठा इसे। फौरन निकल पड़ना चाहिए," कह कर वह जैसे कोई सामान समेटने के लिए दूसरी ओर बढ़ गया। सामने ही पीतल के दो गिलास पड़े थे, वही उठा लिए उस ने।

लज्या उसकी ओर देखती रह गई, फिर धीरे-से उठी—"मैंने अलग से एक गठरी बना ली है। उसमें सारी चीजें हैं। इन गिलासों को क्या करेंगे ले जा कर? छोड़ दो।" कह कर लज्या ने बच्चे को उठा लिया।

गिलास छोड़ कर ध्यानसिंह ने गठरी उठा ली है। कमरे में चारों तरफ उसने घूम कर देखा, पर खुद ही लगा कि उसके देखने का कोई उद्देश्य नहीं है। फिर उस ने लज्या की ओर देखा। लज्या ने गले में एक कपड़ा बांध कर पीठ पर लटका लिया और सोए हुए बच्चे को उसमें डाल लिया है।

ध्यानसिंह ने कहना चाहा—"लाओ, मैं बच्चे को भी उठा लेता हूं।" लेकिन वह कह नहीं पाया।

दोनों बाहर निकले।

"तुम चल सकोगी न?" ध्यानसिंह ने पूछा।

"चल ही लूंगी धीरे-धीरे," वह बोली। उसे चलने से दर्द हो रहा है। कराहट को होठों में ही दबा लेना चाहती है वह। पहली बार बाहर निकल कर गोलों के भयानक धमाके सुन रही है। उसे कुछ याद आया। बोली—"कल

रात इसी गांव में एक गोला गिरा था।"

"इसी गांव में ?" ध्यानसिंह चलता-चलता रुक जाता है।

"हां।"

"कहां ?"

"यह नहीं मालूम, पर इतना बड़ा धमाका था कि जरूर इसी गांव में गिरा होगा। मैं तो पहले ही मरी जा रही थी। तब तक यह नहीं हुआ था। बस, होने ही वाला था। हो गया होता तो बच न पाता।" लज्या की आंखों में आंसू आ गए।

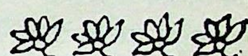
ध्यानसिंह कुछ कहना चाहता है पर वह कह नहीं पा रहा। उसके पास कुछ है भी नहीं कहने को। फिर न जाने उसके मुंह से आप-ही-आप कैसे निकल गया— "कल शाम मेरे पीछे कुत्ते लग गए थे। बहुत दूर तक भागना पड़ा। वहीं शाम हो गई। फिर मैंने रात को भी वहीं ठहरे रहना ठीक समझा।"

उसने कनखियों से देखा। वह उसके साथ-साथ चल रही है। दोनों के बीच एक हाथ की दूरी है, पर ध्यानसिंह को लग रहा है, वह लज्या से बहुत दूर हो गया है—बहुत ही दूर।

● ● ●

ये चटोरे

हरिकृष्ण कौल



प्रोफेसर सोमनाथ कौल तीन बजे के लगभग कालेज से लौटा और कपड़े बदलने के पश्चात् अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में बैठकर कुछ सोचने लगा। थोड़ी देर बाद उसकी पत्नी प्रभा उसके लिए चाय का एक कप और आमलेट लेकर आई। आज उसने यथानियम यह शिकायत नहीं की कि चाय में दूध अधिक मात्रा में डाला गया है। उसने प्रभा से कप ले लिया और चुपचाप चाय की चुस्कियां लेने लगा।

''आज आप अनमने से क्यों हैं? कहीं प्रिंसिपल से फिर झड़प तो नहीं हुई?'' आखिर पत्नी से पूछे बिना न रहा गया।

''नहीं तो।''

''तो फिर बात क्या है?'' पत्नी ने आग्रह किया।

''कुछ नहीं! बस यही सोच रहा हूं कि यह संसार कैसा है? यहां क्यों कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है? यहां क्यों जिन्दगी के तार जल्द ही जंग का शिकार हो जाते हैं और संगीत सिसक सिसक कर............''

''और चाय लाऊं?'' पत्नी को पति के इस दर्शन के साथ कोई दिलचस्पी नहीं थी।

सोमनाथ को इस प्रकार बीच में टोका जाना कुछ अधिक बुरा नहीं लगा और वह अपनी बात कहता गया—''जरा सोचो तो पड़ोसियों का चमन कितना खूबसूरत है! कितना बुद्धिमान! और यदि इस कहावत पर विश्वास किया जाए कि होनहार बिरवा के होत चिकने पात, तो निःसन्देह उसमें एक बड़ा आदमी बनने के सभी गुण मौजूद हैं। लेकिन नहीं। वह एक गरीब आदमी

का बेटा है. अत: अपनी खूबसूरती और तीव्र बुद्धि के बावजूद दर-दर की ठोकरें खायेगा, दाने-दाने का मोहताज रहेगा ।

"लेकिन यह सहानुभूति आज अचानक कैसे उमड़ पड़ी है ?" प्रभा ने तनिक मुस्कराकर पूछा । किन्तु सोमनाथ अपनी ही बात कहता गया—

"आज सवेरे मैंने उसे स्कूल के दूसरे बच्चों के साथ पोलो-ग्राउंड में परेड करते देखा । आगे-आगे बैंड बज रहा था और पीछे-पीछे बाकी लड़कों के साथ वह भी कदम मिला के चल रहा था । वैसे बाकी लड़कों की तरह वह भी प्रसन्न ही दीख रहा था, किन्तु जब कभी उसकी दृष्टि अपने नंगे पैरों पर पड़ती तो उसका चेहरा उतर जाता । रुलाई सी आती और तब वह शेष लड़कों के साथ कदम मिलाने में असमर्थ रहता । इस पर उसे अध्यापक से डांट मिलती और उसके साथी उस पर हंसते थे ।"

"अच्छा, तो फिर ?......" प्रभा वैसे ही मुस्करा रही थी ।

"फिर क्या ?" सोमनाथ ने कुछ खीज कर कहा—"मुझ से यह सब देखा न गया । मैं आज समझ गया कि गरीबी किस चिड़िया का नाम है । किस प्रकार एक होनहार बच्चा मां-बाप की गरीबी के कारण लोगों के उपहास का विषय बनता है ।"

"मगर इसमें गरीब और अमीर का प्रश्न कहां से पैदा हुआ ?" सहसा प्रभा की मुस्कराहट कहीं चली गई और वह तुनक कर बोल उठी - "क्या चमन के मां-बाप उसके लिए दो ढाई रुपए में एक फ़्लीट भी नहीं ला सकते थे ?"

"यदि ला सकते तो फिर रोना किस बात का था ! तुम नहीं जानतीं कि ......"

"मैं सब जानती हूं ।' प्रभा ने पति की बात को बीच में ही काटा—"कल उसकी मां ने मेरे सामने दो सेर मछलियां खरीदीं । दो रुपये सेर का भाव देखकर मुझ जैसी औरत के भी होश उड़ गए । पर उसने ठन ठन कर चार रुपए निकाले और मजे लूटे ।"

"तो क्या बुरा किया ?" सोमनाथ बोल उठा—"उन्हें पौष्टिक खाना नहीं मिलता है । उनके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं । वे बच्चे के लिए दूध तक नहीं खरीद सकते । उन्हें जिन्दगी की कोई भी सुविधा प्राप्त नहीं है । उनके जीवन में अभाव ही अभाव हैं । अब यदि इन सारे अभावों की पूर्ति के लिए उन्होंने महीने में एक बार चार रुपए खर्च करके मछलियां खरीदीं, तो क्या बुरा किया ?"

"आप से बहस कौन करे।" प्रभा ने पति के पास से उठते हुए कहा—"लेकिन मैं यही कहूंगी कि उन्होंने शर्म बेच खाई है। उन्हें केवल पेट भरने से काम है। नहीं तो मैंने बहुत से ऐसे लोग देखें हैं जो घर पर पानी में सत्तू घोलकर पीते हैं और बाहर इस ठाठ से निकलते हैं कि किसी रईस का भ्रम होता है।"

"होता होगा।" सोमनाथ ने पत्नी से केवल इतना ही कहा और मन में उस समाज के दुर्भाग्य पर सोचने लगा जहां घर पर पानी में सत्तू घोल कर पीना और बाहर ठाठ से निकलना आदर्श माना जाता है।

दूसरे दिन सवेरे ही सोमनाथ ने अपने नौकर मुहम्मद को भेज कर चमन को बुला लिया। जब चमन आया तो सोमनाथ ने उसे अपने पास बिठाते हुए पूछा—"कहो, कल की परेड कैसी रही?"

"बड़ी शानदार रही।" चमन की आंखों में चमक आ गई—"हमारा स्कूल अव्वल नम्बर पर आया। युवराज ने खुद हमारे कमांडर को ईनाम दिया। फिर हर एक लड़के को दो-दो नाशपाती दिए गए। उसके बाद......"

लेकिन सोमनाथ कुछ भी नहीं सुन रहा था। वह चमन के मासूम चेहरे को एक टक निहार रहा था। भोला भाला मुखड़ा! दो प्यारी-प्यारी आँखें जिनमें भविष्य के सुहाने सपने नाच रहे थे। कुछ क्षण बाद उसका ध्यान टूटा और उसने चमन से पूछा—"अच्छा, यह तो बताओ तुम नंगे पांव क्यों चल रहे थे?"

तब अचानक चमन का चेहरा उतर गया। आँखों की चमक गायब हो गई और वह धीरे से बोल उठा—"मेरे पास कोई जूता नहीं है। बाबू जी से रोज लाने के लिए कहता हूँ। पर वह......"

सोमनाथ ने जेब से पांच-पांच के तीन नोट निकाले।

"यह लो पन्द्रह रुपये। बाबूजी से कहना कि वह आज ही तुम्हारे लिए एक अच्छा सा बूट खरीदें। शाम को मैं तुम्हें अपने साथ सैर के लिए ले जाऊंगा।"

चमन को यह सब अजीब सा लगा। कुछ दिन पहले बाबूजी के आगे एक मामूली से चप्पल के लिए वह किस प्रकार गिड़गिड़ाया था और आज उसे पन्द्रह रुपए मिल रहे हैं—बूट खरीदने के लिए। पांचवीं श्रेणी का अशरफ़ जैसा चरमर करता हुआ जूता पहनता है, पन्द्रह रुपये में उससे भी अच्छा जूता आ सकता है। उसका जी चाहा कि वह उठे और झपट कर प्रोफेसर साहब से नोट ले ले। लेकिन फिर भी न जाने क्यों उसके मुंह से केवल यही शब्द निकले—

"नहीं बाबूजी मुझे मारेंगे।"

"मारेंगे क्यों ?" सोमनाथ ने उसे नोट थमाते हुए कहा—"कहना भाई साहब ने दिए हैं। मैं कोई पराया थोड़े ही हूँ।"

यह बात चमन को कुछ जंची और उसकी झिझक धीरे-धीरे दूर हुई। तब उसने उठकर रुपये ले लिए और कुछ देर वहां ठहर कर अपने घर चला गया।

"तो आपने उसे बूट खरीदने के लिए पन्द्रह रुपए दिये ?" चमन के जाते ही प्रभा ने सोमनाथ से पूछा।

"जी हां। मेरी मरज़ी।" सोमनाथ ने कहा।

वह तो ठीक है। पर अच्छा होता यदि अपने इन रुपयों को दरिया में फेंका होता।

"सो कैसे ?"

"मैं जानती हूँ कि इन लोगों के लिए जूते पहनना या नंगे पांव फिरना एक सी बात है।"

"तो तुम यह कहना चाहती हो कि वह बेचारा जूतों के अभाव को बिल्कुल महसूस नहीं करता है ?" सोमनाथ ने पत्नी की मूर्खता पर हंसते हुए कहा—"काश, तुमने परेड के समय उसकी हालत देखी होती! उसकी मुखाकृति देखी होती! उसकी आंखों में छिपे भावों को पढ़ लिया होता! तुम्हें नहीं मालूम वह नन्हा सा बच्चा कितना 'सेंज़िटिव' है। जब मैंने उसे पन्द्रह रुपये दिये तो क्या तुमने नहीं देखा कि वह किस प्रकार शर्म के कारण पानी-पानी हो गया।"

"जो भी हो। मैं कहे देती हूं कि दो-चार दिन के बाद ही यह फिर नंगे पांव चलता नज़र आयेगा। तब आप मेरी यह बात मानने पर विवश हो जायेंगे कि कितना ही जोर क्यों न लगाया जाए, कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं हो सकती।"

अन्तिम वाक्य सुनकर सोमनाथ ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया और फिर बोल उठा, "उस जर्मन फिलास्फर ने तो ठीक कहा है कि जब किसी व्यक्ति के जीवन का कोई सा अभाव समाज की दृष्टि में... "

लेकिन प्रभा वहां से उठकर किचन में चली गई थी। अतः सोमनाथ ने अपनी बात यहीं रोक कर उससे शेव के लिए गरम पानी मांगा।

उस दिन कालेज से लौटते समय सोमनाथ ने चमन के लिए एक बनी-बनाई बुश्श-शर्ट, निकर तथा नायलन की जराबें खरीदीं। घर पहुंच कर उसने

जब ये चीज़ें प्रभा के सामने रखीं तो वह उसे फटी-फटी आंखों से देखने लगी। वह सम्भवत: कुछ कह बैठती, किन्तु सोमनाथ ने तभी उसके कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से कहा—"क्या विचार है तुम्हारा, यदि हम चमन को गोद ले लें?"

एक क्षण के लिए प्रभा की सांस रुक सी गई। उसकी शादी हुए छः वर्ष बीत गए थे। किन्तु अभी उसकी गोद सूनी थी। पति की बात सुनकर उसकी आंखों में ममता जाग उठी। उसे लगा उसकी छातियों से दूध की धार बह रही है, जिससे उसका सारा आंचल भीग गया है।

मगर यह सब केवल एक क्षण के लिए हुआ और दूसरे क्षण उसने नाक सिकोड़ी तथा माथे पर बल डालते हुए कहा, "यह क्यों नहीं कहते कि मैं दुनिया भर के गरीब बच्चों के पालने-पोसने का भार सम्भाल कर घर को यतीम-खाने में बदल दूं। यदि किसी को गोद ही लेना है तो अपनी बहिन जी का पिंकू क्यों याद नहीं आया। वह तो स्वयं कहती थी कि......" लेकिन यहां प्रभा रुक गई और एक ऐसे स्वर में, जिसमें रोष भी था, लज्जा भी थी, अपने पति से पूछा... "मगर आप यह कैसे समझते हैं कि मैं सदा ही ऐसी रहूंगी?"

सोमनाथ को हंसी आई और उसने प्रभा के बायें गाल पर एक प्यार भरी हल्की सी चपत लगाई। प्रभा के होंठ भी खिल गए। और उसने पति से कहा... "जाइये, कपड़े बदल कर आइए। तब तक मैं चाय के लिए पानी चढ़ाती हूं।"

"नहीं! मैं इस समय चमन को अपने साथ सैर के लिए ले जा रहा हूं।" सोमनाथ ने कहा "आज मैं उसे नेहरू-पार्क ले जाऊंगा। चाय भी वहीं रेस्तरां में पियेंगे।"

प्रभा को बहुत बुरा लगा। उसने मुश्किल से क्रोध को वश में करके कहा—"जो जी में आये, कीजिए। किन्तु मैं फिर कहती हूं......"

"कि कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं हो सकती।" सोमनाथ ने पत्नी की बात को पूरा करके ज़ोर का ठहाका लगाया। फिर उसने मुहम्मद से कहा कि वह चमन को बुला लाये।

मुहम्मद चला गया और सोमनाथ पत्नी के पास जा कर उसे समझाने लगा—

"किसी बच्चे का भविष्य इस बात पर निर्भर नहीं होता कि उसका जन्म किस घर में हुआ है। मुख्य बात तो यह है कि उसका पालन-पोषण किस वातावरण में होगा? तुम्हें मैंने रामू का किस्सा सुनाया ही है। वह भी आदमी का ही बच्चा था......मगर पाला उसे भेड़िए ने था। अब इस चमन को ही लो।

इसके पास बूट नहीं हैं, ढंग का कोई कपड़ा नहीं है। आज वह इस अभाव का अनुभव करता है, कल नहीं करेगा। कल वह नंगे पांव या नंगे शरीर रहने का आदी हो जाएगा। और इसी नग्नता और दरिद्रता को पूर्णता समझेगा। रामू की ही तरह वह आदमी हो कर भी पशु बन जाएगा। तुम उसे आज यह एहसास दिला दो कि वह भी आदमी है। तुम देखोगी कि वह स्वयं आदमी बनने के लिए हर मुमकिन कोशिश करेगा। मैं बहुत सारे ऐसे लड़कों को जानता हूं जो अपना पेट काट कर, लगभग भूखे रहकर कालेज की फीस जुटाते हैं। पुस्तकें खरीदते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि यह चमन भी ऐसा ही करेगा। बाल-मनोविज्ञान के अनुसार......"

लेकिन प्रभा इन बातों से प्रभावित नहीं हुई थी। वह केवल मुस्करा रही थी। कुछ देर बाद मुहम्मद चमन को लेकर आया। उसने बाल बड़े सलीके से संवारे थे और लगता था कि वह अभी-अभी नहा कर आया है।

"शाबाश, गुड-बाय! इसी तरह साफ सुथरा रहना चाहिए।" सोमनाथ चमन को इस हालत में देख कर खुश हुआ और उसने उसके आगे बुश्श-शर्ट, निकर और जराबें करदीं......"देखो, मैं तुम्हारे लिए क्या-क्या लाया हूं।"

चमन की आंखें चमकने लगीं। बुश्श-शर्ट, निकर, जराबें, तीनों चीज़ें सच-मुच बहुत ही सुन्दर थीं। मगर ये चीज़ें हैं किस के लिए? उसी के लिए! नहीं......यह कैसे हो सकता है? मगर भाई साहिब ने कहा तुम्हारे लिए! उस ने साफ़ सुना। फिर भी......

"क्या सोच रहे हो?" सोमनाथ ने उसे टोका......"ये चीज़ें मैं तुम्हारे लिए ही खरीद लाया हूं।"

चमन को अब विश्वास हुआ कि ये चीज़ें वास्तव में उसी के लिए खरीदी गई हैं। खुशी में उसके होंठ खिल गए। आंखों की चमक गहरी हो गई। सोम-नाथ ने मुस्कराते हुए कपड़ों के लिफाफे उसके हांथों में थमा दिए और कहा... "घर जाकर अभी ये नए कपड़े पहन कर आ जाओ। आज मैं तुम्हें अपने साथ नेहरू-पार्क ले जाऊंगा। और हां—बूट तो बाबूजी ने तुम्हारे लिए खरीदा ही होगा। उसे भी पहनकर आ जाना। हम भी देखेंगे कि कैसा है?"

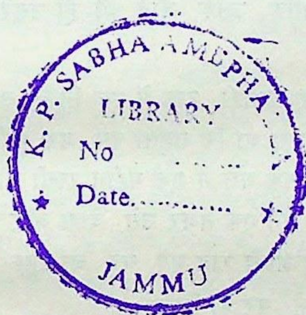
आंखों की चमक सहसा लुप्त हो गई और चमन ने डरते-डरते कहा . ... "वह रुपये बाबूजी ने मुझ से राशन खरीदने के लिए लिये। घर में चावल खत्म हो गये थे और . और उन्होंने कहा कि वह कल मेरे लिए बूट लायेंगे। आप के पैसे भी......"

"तो रुपये तुम्हारे बाबूजी ने लिए ! तुम्हें कुछ नहीं मिला ?" प्रभा को एक निराली खुशी हुई थी।

"बाबूजी ने मुझे केवल एक चवन्नी दी। मैंने आइस-क्रीम खाई...... इससे पहले कभी नहीं खाई थी।"

प्रभा खिलखिला कर हंस पड़ी—"अब मालूम हुआ कि इन लोगों को केवल पेट भरने से काम है। ये लोग चटोरे हैं......भुक्खड़ हैं।"

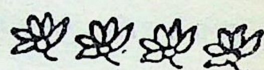
लेकिन इस समय पत्नी की बात का उत्तर देने के लिए प्रोफेसर सोमनाथ ने अपने को असमर्थ पाया और चुपचाप कपड़े बदलने के लिए चला गया। चमन कुछ देर के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा। फिर हाथ के लिफ़ाफ़े नीचे रख कर चुपके से बाहिर खिसक गया। ● ● ●



K. P. SABHA AMEPHA
LIBRARY
No ......
Date............
JAMMU

डब्बूजी

ठाकुर पुंछी



अभी-अभी डबूजी की पट्टी करके उसे आराम से कुर्सी पर सुलाकर यह कहानी लिखने बैठा ताकि उसके जीते जी ही उसके विषय की यह रचना पूरी कर लूं।

डबूजी मुझे एक अन्धेरी रात में एक निर्जन सड़क पर पड़ा मिला था। मैं सिनेमा देखकर लौट रहा था कि सहसा इस पर मेरी नज़र पड़ी। यह मेरे पीछे पीछे चल रहा था। इसके गले में एक महीन रस्सी थी। शायद कहीं से रस्सी तोड़ कर भाग आया था। मैंने एक नज़र उसे देखा और फिर चल पड़ा। सोचा, यह भी मेरी ही तरह अब आधी रात गये घर जा रहा होगा। मैंने इसका ध्यान छोड़ा और अपने रास्ते पर हो लिया।

अभी मैंने आधे से कम ही रास्ता तय किया होगा, मुझे आभास हुआ कि कोई मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। और यह देखकर कि वही पिल्ला मेरा पीछा कर रहा है। मुझे बहुत खेद हुआ। मैंने सोचा, शायद अब यह मेरा ही साथी बनकर रहना चाहता है। इसलिए मैंने स्पष्टीकरण के से स्वर में कहा—

"देखो भई! तुम आधे घंटे से मेरा पीछा कर रहे हो और शायद मेरे साथ ही रात बिताना चाहते हो! परन्तु मेरा कोई खास ठिकाना नहीं, एक छोटा सा कमरा है और एक खाट। जिसमें बड़ी कठिनाई से रहता हूं और सोता हूं। खाना होटल खाता हूं। मैं किसी भी स्थिति में तुम्हें अपने यहां नहीं ले जा सकता। इसलिए उचित यही है कि इस तरह मेरा पीछा करने और ठिठुरने के बदले तुम किसी बुझे तंदूर के पास जाकर सो जाओ। वहां तुम्हारे और साथी भी होंगे। प्रातः होने पर वहीं चले जाना, जहां से इस दशा में भाग आए। मुझे बेकार परेशान न करो।

यह दूर बैठकर मुझे देखता रहा। मेरी बात ध्यान से सुनता रहा। मैंने सोचा समझ गया होगा और अब कहीं चला जाएगा।

मैं एक गली में से निकल कर अपने ठिकाने पर पहुंच गया और द्वार बन्द करके खाट पर लेट गया; परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी न सो सका। मुझे ऐसा लग रहा था कि किवाड़ के साथ लगा वह पिल्ला मुझे घूर रहा है। मैंने द्वार खोला सचमुच वहां बैठा था। पहले तो मुझे विचार आया कि एक ठोकर लगाकर साले को गली से बाहर फेंक दूं, किन्तु इसने ऐसी नजरों से मुझे ताका मानो कह रहा हो—बस रात बितानी है। भोर होते ही चला जाऊंगा।

मैंने इसे उठाया और अपनी खाट पर फेंक दिया।

उसी रात से यह मेरे साथ है और डेढ़ साल से लगातार मेरे दुःख सुख का भागीदार है। मैंने अनाथ बालक की तरह इसका भरण-पोषण किया है। इसकी हर चाह पूरी की है। इसे नहलाया है। धुलाया है। साथ लेकर घूमा हूं और आज इसकी अंतिम रीति पालने की भी तैयारियां कर रहा हूं।

सप्ताह भर तो इसके लिए मुझे बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं। प्रायः उठकर नहलाना धुलाना। बाजार से दूध लाकर उसे पिलाना और फिर अन्य आवश्यकता किन्तु एक सप्ताह के बाद मुझे इसकी ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता नहीं पड़ीं। क्योंकि मुहल्ले के छोटे-छोटे बच्चे, जिनमें अधिक संख्या लड़कियों की थी,उसे अपने साथ उठाये-उठाये फिरते थे। और वे ही उसकी अन्य आवश्यकताएं भी पूरी कर देते थे। इस प्रकार यह लड़कियों की ही गोद में पलकर जवान हुआ। छुटपन में एक मरियल सा कुरूप पिल्ला था। जवानी में पग धरा तो इसका रंगरूप ही बदल गया। इसकी आकृति में एक अद्‌भुत सा परिवर्तन हुआ। छोटे-छोटे मुलायम बाल, गठा हुआ बदन और फिर इसके देखने और प्यार करने का अन्दाज—हर राह चलते को अपनी ओर खींच लेता और स्वयं भी तत्काल प्रत्येक से घुल-मिल जाता।

लेकिन जवानी में इसे वे आराम नहीं मिले, जो इसे बचपन में मिल सके थे। अब इसे कोई भी उठाए-उठाए न फिरता था। मुहल्ले के बच्चे अब इसे दूर ही से देखते या कभी छेड़ देते। और यह भी अब उन्हें घूर कर ही देखता रहता और कभी कभी अपनी बेअकली का प्रमाण तिरछी आंखों से देखकर दे देता!

इन्हीं दिनों हमारे मुहल्ले में एक असाधारण घटना घटी। असाधारण इस-लिए कि तीन साल से इस गली में न कभी बैंड बजा, न लड़कियों ने ढोलक पर

गीत गाए न रंग-बिरंगी झंडियों और बिजली की नीली-पीली बत्तियों से इस गंदी अंधेरी गली को दुल्हन की तरह सजाया गया। यहां तक कि मकानों की दीवारें भी सन् सत्तावन के विद्रोह की याद दिलाती हैं—

किन्तु अब की बार मैंने एक मकान की मरम्मत होती देखी। और फिर सफ़ेदी और पीली मिट्टी के ढेर भी देखे। मैंने सोचा, संभवत: मुहल्ले के मकानों का मालिक परलोक सिधार गया और उसकी वसीयत के अनुसार उसकी मृत्यु के बाद इन दीवारों को नया जन्म दिया जा रहा है। पर मेरा यह अनुमान भी गलत निकला। डबूजी के फेरे यह बताते थे कि कुछ होने वाला है या फिर कुछ हो गया। किन्तु मुझे ज्ञात न था।

एक दिन मैं अपने कमरे में लेटा था कि मेरे मुहल्ले की एक जानी पहचानी आकृति कमरे में प्रविष्ट हुई। यह भी एक नई बात थी। हम यह जानते थे कि हम ही मुहल्ले के वासी हैं; किन्तु कभी एक दूसरे से मिल बैठने या बातचीत करने का संयोग न हुआ था। वैसे भी बड़े-बड़े संपन्न नगरों में ऐसा ही होता है कि हम एक ही मुहल्ले में रहते हुए भी एक दूसरे से दूर-दूर ही रहना पसन्द करते हैं। बस, एक दूसरे को देखते हैं, एक दूसरे की बाह्य संपन्नता पर ठण्डी आहें भरते हैं और अपने द्वार पर से किसी को दूसरे के कंधों के सहारे गुजरते देखकर मन-ही मन उसके सौभाग्य पर ईर्ष्या करते हैं।

मैंने कहा, "आइये !"

बड़ी नम्रता से वह बोला, "हमें कुछ दिनों के लिए बिजली का पंखा दरकार है। हमारे सम्बंधी गांव से आए हुए हैं और अपनी कन्या का ब्याह हमारे यहां करना चाहते हैं। क्योंकि—

मैंने पंखा उठाया और उसे सौंप दिया।

अब हमारे मुहल्ले में खूब चहल-पहल थी। कुछ सुन्दर आकृतियां भी दीखने लगीं। कहीं-कहीं से कभी कभी कोई पहला हास भी खिल उठता। गली में मानो जान सी आ गई। मुहल्ले की लजीली-भोली मूरतें भी एक दूसरे के निकट आतीं। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ! आखिर कभी तो यह गली जागी कभी तो इस उजड़े मुहल्ले में बहार आई ! यह सुवासित वातावरण अस्थाई सही, पर सुन्दर तो है। और फिर सलोनी चीजें अस्थाई ही हुआ करती हैं ? मैं इस क्षणिक सुन्दर वातावरण से उल्लसित होता रहा और ढोलक की ताल पर उड़ती हुई जीवनप्रद तानें आत्मा के अन्दर समोता गया। . . . . . .

लड़की का नाम बाला था। चुप्पू स्वभाव की—देखती तो बस देखती ही

रहती ! मानो इसने कभी ऐसा नहीं देखा ! हंसती तो केवल हंसती ही रहती, जैसे मात्र हंसना आता हो। परन्तु वाणी मूक जैसा कि नगर से दूर की ग्रामीण अल्हड़ कुमारियों में होता है। अधिक उपचार से नितांत निश्चित—पहले तो मुझे शक हुआ कि यह लड़की गूंगी है। बस देख और मुस्करा ही सकती है; किन्तु एक दिन मेरा यह भ्रम भी मिट गया मैंने देखा कि वह बड़े प्यार से डबूजी को डांट रही थी; क्योंकि उसने किसी बच्चे को छेड़ा था और वह डर के मारे रोने लगा था।

अब डबूजी की भी जान-में-जान आ गई थी। मैंने देखा—उसकी वह बेअकली और रूठा-रूठा सा चेहरा किसी और ही उल्लास का परिचय दे रहा था। अब वह बहुत ही खुश था। दिन भर बाला के घर के फेरे लगाता रहता। वहां ही खाता पीता। मैंने सोचा, सिर से बला टली, व्यर्थ के खर्चों से छुटकारा मिला। अन्यथा दिन में आठ दस आने तो इसके पेट में चले जाते ही थे, अब मेरा इतना काम था कि अपना कमरा खुला छोड़ कर दफ्तर चला जाया करता; क्योंकि यह दिन भर कमरे में ही रहता था परन्तु मैंने देखा, जब कभी मैं समय-असमय दफ्तर से लौटा इसे गायब पाया। यह मेरे लिए असह्य था। आखिर हर बात की सीमा होती है। कुछ न सही कपड़ा लत्ता होता है। वह ही कोई उठाकर ले गया तो बस नंग धड़ंग रह गए !

एक दिन मैंने उसे समझाया, देखो डबूजी, यह कमरा मैं इसलिए खुला छोड़ जाता हूं, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरी अनुपस्थिति में तुझे यह लगे कि तेरा कोई ठिकाना नहीं। कमरे में पुस्तकें हैं, कुछ आवश्यक साहित्यिक फाइलें और कुछ फटी पुरानी किन्तु मूल्यवान ऊनी पतलूनें। और यह तुम पर है कि उनकी रक्षा करो परन्तु तुम में पलायन की प्रवृत्ति बढ़ रही है। मेरी दशा पर दया करो और मेरी अनुपस्थिति में कमरे में ही रहा करो। ठीक उसी तरह जैसे एक डेढ़ साल रहते आए हो। यदि यह भी नहीं होता तो चलो दिन भर गायब रहो, पर मेरे आने के समय से पहले कमरे में आ जाया करो तो झूठी सांत्वना तो बनी रहे।

डबूजी को जैसे अपनी गलती पर लज्जा आई। मेरे पैरों में मुंह दबोच चुपचाप बैठा रहा, मैंने सोचा, पशु है, पर सुनता तो है। इसलिए सुन लिया समझ लिया और आदेशानुसार अपना कर्त्तव्य पूरा करेगा? वैसे भी स्वभाव और रंग ढंग से अपने आपको किसी अच्छे बढ़िया वंश का प्रकट करता था, पर था तो आखिर कुत्ता ही। एक दो दिन मेरे निर्देश पर चलता रहा, लेकिन इसके बाद अपने स्वाभाविक उन्मनेपन के वशीभूत फिर अपने पुराने ढंग पर आ गया ! दिनभर बाला के पास बैठा रहता। उसके साथ घूमता-फिरता पर मुझ से आंख बचाकर।

तंग आ कर मैंने अन्त में एक दिन कमरा बन्द करके इसे भरपूर पीटा। सोचा, लातों के भूत बातों से नहीं मानते। मैंने लातों से काम लिया। मैं इसे पीटता रहा, यह सिर छिपाए मार खाता रहा। जब मैं थक गया और इसकी ढिठाई की अति हो गई तो मैं इसे घसीट कर गली में छोड़ आया। स्वयं द्वार बन्द करके सुस्ताने लगा। मैंने सोचा, रात भर अकेला इस गली में पड़ा रहेगा, दिमाग ठिकाने आ जाएगा और अपने किए पर पछताएगा। मैं चुप बैठा रहा—आखिर मानव हृदय था, बच्चों की तरह इसे पाला-पोसा था। मित्रों की तरह साथ निभा रहा था। मुझे अपने किए पर बड़ा पछतावा आया। सोचा, खूब दण्ड मिल गया है। अब भीतर बुला लो। मैंने द्वार खोला। यह वहां से गायब था ऊंचे स्वर से मैंने डबूजी डबूजी पुकारा, किन्तु यह न आया। मुझे इस बात पर अति शोक हुआ और मैंने सदा के लिए इसे तिलांजलि दे दी।

अब यह मेरे पास नहीं आता था। पर मैंने देखा जब मैं दफ्तर जाता या वापस आता तो यह बाला के मकान के किवाड़ में से गर्दन निकाल कर मुझे अवश्य देखता। मैंने इस ओर अधिक ध्यान न दिया। वैसे भी कृतघ्नता और नमक हरामी का जो प्रमाण इस जैसे वफादार जानवर ने दिया उसे देखते हुए मुझे। अधिक ध्यान देना भी नहीं चाहिए था।

जिस दिन बरात आनी थी उस दिन तो उसकी गतिविधि से यह प्रतीत होता था मानों बरात का प्रबन्धक वही है। लड़कियों के झुरमुट में, बच्चों की छोटी-छोटी टोलियों में, बड़े बूढ़ों की सभाओं में– जहां देखो डबूजी मौजूद—अपना आप सहलाने के लिए पेश कर रहे हैं और सब ही बड़े प्यार से उसे सहला रहे हैं! साला चलता ऐसे था मानो वह ढोलक की थाप पर थिरक रहा हो!

हर कोई इससे बातें कर रहा था और यह ध्यान से सुन रहा था। मैं भी मुहल्लेदार के नाते वहां गया था, किन्तु मेरे पास तक नहीं आया। दूर से कभी-कभी उचटती-सी दृष्टि मुझ पर डालता जैसे यों ही नजर पड़ गई हो। मैं मन-ही-मन कुढ़ता रहा और यह निश्चय कर लिया कि अब की बार अवसर मिला तो अपने दिल के अरमान निकाल लूंगा। साले को पीटूंगा कि सारे कसबल निकल जायेंगे—पर था तकदीर वाला, हर कोई इसकी थोथनी को चूमना ही चाहता था!

जब बरात आई तो डबूजी वहाँ सबसे आगे। कभी बैंड बाजे के आगे, कभी दूल्हा के पीछे। जैसे बारातियों की नाक डबूजी ही हो।

रात भर मुहल्ले में अच्छा-खासा कोलाहल रहा। मैं सारी रात जागता रहा और डबूजी को कोसता रहा। किन्तु मुझे खुशी थी कि अब बाला चली जाएगी

और यह निराश हो जाएगा। फिर वापस मेरे पास चला आयेगा और मैं एक दिन इसकी खूब खबर लूंगा, ताकि मेरे दिल की सारी भड़ास निकले !

दूसरे दिन जब बाला अपने ससुराल गई, मैं वहां न था। जान-बूझ कर मैं अपना कमरा खुला छोड़ गया था कि डब्बूजी हताश होकर आखिर जाएगा कहां। और कमरा बन्द पाकर उसका दिल टूट जाएगा। और फिर उसे यह आभास न हो कि अब इस जगत में मेरा कोई नहीं।

लेकिन जब दफ्तर से लौटा, कमरे में कोई न था। यह नहीं आया और मुझे पता चला कि जब बाला कार में बिठाई गई तो यह कार के चारों ओर चक्कर काट रहा था। इसने प्रार्थना भरी दृष्टि से दूल्हा को देखा, दूल्हा की बहन को भी, घूंघट काढ़े बैठी बाला को भी। किसी ने इसे नहीं बुलाया। किसी ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया, न पुचकारा, न सहलाया और कार चल पड़ी। इस ने सहमी-सहमी हुई नज़रों से सब को देखा, किन्तु किसी ने आंख उठाकर भी इसे नहीं देखा। फिर यह कार के पीछे भागा और जब बाजार के अन्तिम मोड़ पर पहुंचा तो इसने एक बार रुक कर पीछे मुड़ कर देखा पर किसी ने इसे वापस न बुलाया और यह कार के साथ-साथ ही भागता चला गया।

डबूजी आखों से ओझल क्या हुआ, नींदें रूठ गईं। मैंने उसकी अनुपस्थिति की तीव्रता से अनुभव किया। वास्तव में साल डेढ साल एक साथ रहने के कारण यह मेरे जीवन में इतना निकट आ गया था कि अब इसको मैं एक अभाव-सा अनुभव करता। रात को मैं इसे किसी कवि की कविता या किसी उपन्यास एवं कहानी का कोई भाग पढ़कर सुनाता। यह बहुत ध्यान से सुनता। रात-रात भर मैंने इससे अपने दुखड़े रोए हैं और इसने सुने हैं। जब मैं अपने आस-पास के लोगों और उनकी परिस्थितियों से मायूस होता तो इसी से बातें करके अपना दुःख हल्का करता। इसने कभी मुझे गिले शिकवे का मौका नहीं दिया। सच तो यह है कि अपन मित्र-मंडली में मुझे इसकी मित्रता और वफादारी पर सर्वाधिक गर्व रहा। जहां तक मित्रता का संबन्ध था, मैंने इसकी दोस्ती को ऊंचे स्तर का पाया। इसके चले जाने पर मेरा एकाकीपन फिर गूढ़ा हो गया।

परन्तु आज मुझें डबूजी मिल गया।

आज मैं नित-नियम से कुछ देर बाद दफ्तर से लौटा। मैंने देखा, द्वार पर यह चित पड़ा है। मेरे मुंह से डबूजी निकल गया और जवाब में इसने बस अपनी पूंछ हिलाई। मुंह से खून बह रहा था और सारा बदन टूटा हुआ-सा था। मैंने सोचा, किसी गाड़ी के नीचे कुचला गया है। मैं इसे उठाकर कमरे में

ले आया और देर तक इसके बदन को सहलाता रहा, गिले-शिकवे करता रहा। इसकी यह दशा देख कर मेरे नयनों से अश्रुकण छलक पड़े—

मैं जब इसकी मरहम-पट्टी कर रहा था तो एक छोटे से लड़के ने बाहर से पूछा—

"यह कुत्ता आपका है ?"

मैंने जवाब दिया, "हां !"

उसने कहा, "बीबीजी ने कहा है, इसे बांध कर रखिए। फिर हमारे यहां न आये।"

मैंने देखा, डबूजी लड़के की बातें ध्यान से सुन रहा था।

मैंने पूछा, "इसे पीटा किसने ?"

वह लड़का रटे हुए वाक्य दोहरा कर चलता बना और मैं जान गया, उसकी यह गत क्यों बनी !

वास्तव में बाला अपने पति की अपेक्षा डबूजी का अधिक ध्यान रखती थी। लड़का था नवजवान, जवान थी उसकी उमंगें, उसके इरादे ! वह चाहता था कि वह उससे पल भर के लिए भी दूर न हो, परन्तु बाला थी कि डबूजी के ध्यान में खोई हुई। उसे नहलाती-धुलाती ! अपने पास बिठाकर खाना खिलाती। वैसे ही जैसे वह गांव में अपने ढोर-डंगरों को अपने हाथ से चारा देती थी। बावली पर उन्हें पानी पिलाने ले जाती थी। घण्टों उनके पास बैठी उनके बदन सहलाती थी और छोटे-छोटे बछड़े उसे देखकर अपनी गर्दनें उठा लेते थे ताकि वह उन्हें भी सहलाये, उनसे भी प्यार करे !

दिन भर वह डबूजी को अपने गांव की बातें सुनाती, नन्हें नन्हें बछड़ों की कहानियां, जो उससे बहुत प्यार करते और रम्भा-उसकी प्रिय गाय की कहानी, जिसे उसने अपने हाथों पाल पोस कर बड़ा किया। जो अब एक नन्हें वत्स की मां थी। और जब उसने अपना गांव छोड़ा था अपना यह परिवार छोड़ा था तो वह उनसे लिपट कर रोई थी। वे सब चुपगुम उसकी ओर देखते रहे थे। और फिर गांव का शेरू कुत्ता, वह तो उन्हें मोटर लारी की सड़क तक छोड़ने आया था। जब चलने लगी तो गांव के चौकीदार ने उसकी आंखें कपड़े से ढांप दी थीं, और डबूजी उसकी ये बातें बड़े ध्यान से प्यार से सुनता और फिर एक गंवार अल्हड़ लड़की की बातें बड़े शहर में डबूजी के अतिरिक्त सुनता ही कौन ! दूसरे तो उसे पागल और मूर्ख ही समझते न !

लेकिन बाला का घरवाला फिल्मों का मारा था। वह उसे फिल्मी गाने

सुनाता, फिल्मी कहानियां बताता—बाला जवाब में कह देती, देखो, डबूजी कुछ कहना चाहता है ..देखो जी, डबूजी हँस रहा है। डबूजी, डबूजी . !

मानव स्वभाव था, लड़का जल भुन गया। वह भी डबूजी को पसंद करता था पर उसे लगा कि यह कुत्ता उनके प्रणय में बाधक है। जब तक गांव की स्मृति शेष है बाला उससे कभी प्रेम नहीं कर सकती। वह कभी सच्ची खुशी पा नहीं सकता।

अन्त में उसने कोई बहाना बनाकर उसे खूब पीटा और जब बाला उसे छुड़ाने आई तो क्रोध में उसे भी दो तीन जमा दीं। डबूजी ने जब देखा कि उसके कारण बाला भी पिट गई, यह वहां से स्वयं ही चला आया और बड़ी कठिनाई से घिसटता-घिसटता कमरे तक आ पहुंचा।

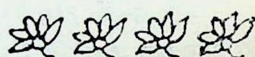
मैंने उसकी टांग पर पट्टी बांधते हुए कहा, ''डबूजी, अबकी बार बच गया। तो फिर क्या इरादे हैं ? बाला ने तो स्थाई रूप से अपना गांव छोड़ दिया। वह तो अब यहां आने से रही !

मैं देख रहा हूं डबूजी चुपचाप एकटक मुझे देख रहा है। मुंह से अब खून बहना बन्द हो गया है, किन्तु आंखों से नीर लगातार वह रहा है। आंखों में अब तक तो पहली-सी मुर्दनी नहीं रही। अब कुछ मंद सी चमक प्रकट हो गई है। अब तक तो मरा नहीं। मुझे देख रहा है और लगता है अब मरेगा भी नहीं। वैसे भी कुत्ते बड़े सख्त जान होते। पर बाला का गांव जरूर मर गया।

● ● ●

तीन लड़कियां, तीन ट्यूटर

मोहन यावर



चाय के टेबल पर बैठे हुए हम कविता, गीत, शराब, सौन्दर्य और प्यार की बातें करने लगे। फिर यह बातें प्यार की कहानियों से होती हुई औरत के पतले-पतले होठों तक पहुंच कर समाप्त हो गयीं।

कान्त मेज़बान था; मैं, कुमार और प्रकाश मेहमान थे। हमारा यह नियम था कि 'स्वास्तिक रैस्टोरेंट' में जो पहले आ जाये उस रोज़ का सारा बिल वही चुकायेगा। लेकिन मेज़बान को यह सुविधा रहेगी कि वह अपनी स्थिति के अनुकूल या अपनी जेब के मुताबिक आर्डर दे। इसीलिये आज प्रोग्राम केवल चाय तक ही सीमित रहा क्योंकि कान्त की जेब ज़रा हल्की थी।

चाय का दौर चलता रहा। कप छलकते रहे और खाली होते रहे। सीज़र के सिग्रेट फूंके जाते रहे और धुआं छल्ले बन कर नाचता रहा, बढ़ता रहा, फैलता रहा।

'स्वास्तिक' चहचहाने लगा। जैसे जिन्दगी की लहर दौड़ गई हो। हर टेबल पर कोई बैठा हुआ था। बीयर के काग उड़ रहे थे। पैमाने छलक रहे थे। जैसे ज़िन्दगी मचलने, थिरकने और नाचने लगी हो। काफ़ी की कड़वाहट तैर रही थी और चाय की सोन्धी-सोन्धी महक दिलों को तरंगित करने लगी।

कुमार ने नाज़ुक सी प्याली को होठों तक ले जाकर कहा, "आज तो मैं कुछ इस मूड में हूँ कि कुछ सोचूं। लेकिन क्या सोचूं, यही सोच रहा हूँ?"

प्रकाश ने चाय का एक घूंट पिया और बोला, "तुम लोगों को यह जान

कर खुशी होगी कि आज मुझे एक लड़की की ट्यूशन मिली है और इसलिये बेहतर यही है कि मोहन लड़कियों और ट्यूटरों की बात सुनादे क्योंकि कुमार कुछ सोच रहा है यह उसे भी मालूम नहीं और कान्त अपने नये और ताज़ा गीत सुना-सुना कर थक चुका है और अब सिग्रेट के धुयें से छल्ले ही बना रहा है, नहीं तो मैं .....''

''मोहन को तकलीफ़ न देता, परन्तु यह कहानियां लिखता है, रंगीन कहानियां और आज का टॉपिक भी अच्छा है। लड़कियां और ट्यूटर......''

फिर मैंने चाय की आखिरी चुस्की ली और कहना शुरू किया—

''यह उस वक्त की बात है जब मैं बावन रुपये का क्लर्क था। घर की हालत खराब थी। मेरा छोटा भाई बी. ए. (आनर्स) की डिग्री लिये नौकरी के लिए हाथ-पांव मार रहा था; सिफारिश कोई न थी। इसी लिए वह नौकरी जैसे तमग़े से वंचित था। वह मेरा हाथ बटाने में मजबूर था।

एक दिन मां उस के लिए तीस रुपये का 'वज़ीफा' लाई। वह भी ट्यूशन की शक्ल में। मां भी खुश थी, मैं भी खुश था और मेरा भाई भी तीस रुपये के नशा में झूम रहा था। दो घण्टे कोई प्रेमचन्द का उपन्यास न पढ़ एफ़. ए. की किताबों से जी भर लिया।

दोपहर ढली तो वह लड़की भी नई नवेली दुल्हन की तरह हमारे घर आ गई। दो-एक किताबें और दो-एक कापियां लिये हुए, रेशमी सफ़ेद साड़ी, सफेद ही जम्पर, पॉण्डस की महक, कोटी का पौडर, इवनिंग इन पैरिस का सैंट और जूड़े में मोतिये का ताज़ा हार, यूक्टेक्स से रंगे हुए नाखून और......

''लड़की पढ़ने आई है या ?''

एक पल के लिए मेरे भाई ने उस की तरफ देखा और फिर माँ से गरज कर कहने लगा, ''मां, देवी जी से कह दो कि मैं इन्हें नहीं पढ़ा सकूंगा। मैं...''

और वह लड़की अपनी आखों के निषंग से निकले हुए सुरमई तीरों को टूटते हुए देखती रही—देखती रही!

जब दूसरे दिन मैंने इसका ज़िक्र अपने दोस्त से किया, जो जी. एम. कॉलेज में प्रोफेसर था, वह मुझ से कहने लगा—''मोहन भाई, ऐसा भी होता है लेकिन जो मेरे साथ हुआ वह शायद अनोखा ही था।''

मैंने पूछा—''वह कैसे ?''

उसने कहा—''मैंने सोचा था कि चन्द्रकान्ता की ट्यूशन के बाद मेरे दिन

अच्छे हो जायेंगे और मैं सैर भी कर आऊंगा—मगर अनोखी बात यह हुई कि मैं उसे पढ़ा ही न सका।"

"वह क्यों?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जब मैं पहली बार उसे पढ़ाने के लिये उसकी कोठी पर पहुंचा तो सब से पहले उसके नौकर ने त्योरियां चढ़ा कर मेरा स्वागत किया! उसे इस बात का पता था कि मैं चन्द्रकान्ता का ट्यूटर बन कर आया हूं, लेकिन फिर भी उसने पूछा—"क्या बात है साहब?"

"पहले तो मेरा जी चाहा कि उस से कह दूं—तुम्हारा सर। लेकिन मैंने सम्भलते हुए कहा—"छोटी बेबी से कहिए कि प्रोफेसर सोम प्रकाश आये हैं।"

और वह बद्तमीज़ न जाने क्यों हंसता हुआ दूसरे कमरे में चला गया और मैं बाहर आंगन में ही खड़ा रहा। लेकिन जब मैंने चन्द्रकान्ता की बात सुनी तो कलेजे पर पत्थर रख कर बैठक में जाने की बजाय फाटक की तरफ चला गया और फिर दोबारा उस फाटक के अन्दर जाने की कभी कोशिश न की।

मैंने प्रोफेसर से हंसते हुए पूछा—"क्या तुम्हें उसकी आवाज़ से नफ़रत हो गई थी या......"

लेकिन प्रोफेसर ने मेरी बात काटकर कहा, "बात तो यह थी कि उसने अपने नौकर से कहा था कि उसे बैठक में बिठाओ। मैं अभी मेक-अप करके आती हूँ।"

और फिर जब एक शाम मैंने सतपाल से इन टुकड़ों को एक लड़ी में पिरो कर कहानी का रंग देने का इरादा ज़ाहिर किया, तो उसने कहा—"अभी तुम्हारी कहानी अधूरी है। जब तुम मेरी ट्यूशन का हाल सुनोगे तो शायद कोई बात बन जाय।"

मैंने नज़र उठा कर सतपाल की तरफ़ देखा। एक सीधा-सादा नौजवान, जिस को चाय प्यारी थी, सिग्रेट, किताबें और साहिर का 'ताजमहल'। उसकी एक ही तमन्ना थी कि ज़िन्दगी भर उसे पढ़ने के लिये किताबें, फूंकने के लिये सिग्रेट और थकान दूर करने के लिए चाय मिल जाये। फिर वह दुनियां में अपने आप को सब से बड़ा भाग्यवान समझेगा। उसे मालूम है ऐसा कभी नहीं हो सकता। लेकिन एक आशा – एक आशा ही तो है जो उसे बहलाये जा रही है कि ऐसा ज़रूर होगा! ज़रूर होगा।

उसने सिग्रेट का बचा हुआ टुकड़ा सड़क पर फेंक दिया और कहने लगा कभी मैं भी ट्यूटर था। एक क्लर्क की बेटी को ट्यूशन पढ़ाया करता था जो बी. ए. की प्राइवेट तैयारी कर रही थी।

जब उसे ट्यूशन पढ़ाते हुए एक महीना बीत गया तो मेरे दोस्तों ने मुझे मजबूर किया कि मैं उन्हें होटल में चाय पिलवाऊं। एक दिन मैं ट्यूशन की फीस लेने उस के घर गया। मेरे दोस्त होटल में मेरी इन्तज़ार कर रहे थे। जब मैं उसके कमरा में पहुंचा तो वह चटाई पर बैठी पढ़ रही थी। उस ने मुझे देख कर नमस्ते कही और टूटी हुई कुर्सी पर बैठने को कहा—मैंने उसकी तरफ देखा इस से पहले कि रुपये मांगूं—मेरी नज़रों के सामने उसकी फटी हुई कमीज़ घूम गई जिस के अन्दर से शमीज़ झांक रही थी। बार बार सिलने के बावजूद भी सिल न सकी थी। मेरे माथे पर पसीने की बूंदें उभर आईं। फिर मैंने देखा—मेरे सामने अस्सी रुपये पड़े थे। लेकिन मैं चुपके से बाहर निकल आया।"

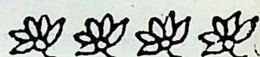
सतपाल शान्त हो गया। फिर उठते हुए बोला—"मोहन भाई, अब मैं चलता हूँ – आदाब !"

जब मैंने अपनी बात खत्म की तो मैंने देखा कि उन तीनों के माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं।

और मैं अपने खाली प्याले में चम्मच हिलाने लगा। ● ● ●

एक
तहसील मुहर्रिर
की
दास्तान

पुष्कर नाथ



(भूमिका)

सज्जनो !

आज से तीन बरस पहले मैंने यह दास्तान लिखी तो एक दोस्त के कहे अनुसार इसे एक विद्वान् को दिखाया ताकि वह इस दास्तान में आवश्यक सुधार करदे। विद्वान् ने इस नाचीज़ को सलाह दी कि दास्तान में कोई जान नहीं, इसलिए इसे दुबारा लिखा जाये। अतः मैंने इस को दुबारा लिख कर उनको दिखाया तो कहने लगे कि इसमें सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि का अभाव है। मैंने तीसरी बार इसे लिख कर पेश किया तो उन्होंने कहा कि इस में स्थानीय वातावरण नहीं है। इस तरह आज तक यह दास्तान चालीस बार लिख चुका हूँ। अब मैं इसे आखिरी बार फिर लिख रहा हूं। मैंने इसमें उस विद्वान् के कहे अनुसार सब पहलूं सामने रख कर सुधार किए हैं। अब भी यदि मैं इसे उनके पास ले जाऊं तो सम्भव है कि वे मुझे फिर सलाह देंगे कि मैं इसे एक बार और लिखूं। नतीजा यह होगा कि यह दास्तान कभी भी आप तक न पहुंच सकेगी। पूर्ण आशा है कि आप इसकी त्रुटियों और अभावों को, जो उस विद्वान् महोदय को न दिखला सकने के कारण इस में रह गए हों, नज़र अन्दाज़ करेंगे।

—लब्बू राम मुहर्रिर तहसील

(सामाजिक पृष्ठभूमि)

सज्जनो !

मैं, लब्बू राम, सुपुत्र गोविन्दराम इलाका सुदेशपुर का रहने वाला हूं। सुदेशपुर एक छोटा सा गांव है। जहां के लोग अधिकतर खेती-बाड़ी करते हैं और पशु पालते हैं। गांव में एक जुलाहा है, एक दुकानदार है, एक बढ़ई है, और एक लोहार है। एक दर्जी और एक कुम्हार भी है। सुदेशपुर के लोग, लगभग सब के सब ही अनपढ़ हैं। केवल हमारा ही एक घराना है जो कुछ पढ़ा-लिखा है। अत: चार पुश्तों से हमारे परिवार के मर्द कलर्की का पेशा अपनाये हुए हैं। यह नाचीज़ अकेला व्यक्ति है जिसने 'एंट्रंस' तक शिक्षा प्राप्त की है और वह भी कस्बे के ही स्कूल में। सुदेशपुर के लगभग सभी मकान कच्ची ईंटों के बने हुए हैं। छत्तें घास फूस की हैं जो कि फौरन आग पकड़ लेती हैं। । यही कारण है कि इलाका सुदेशपुर में साल में दो-चार बार आग लग जाती है। सारे गांव में हमारा मकान प्रसिद्ध है, क्योंकि यही एक मकान है जो पक्की ईंटों का बना हुआ है। हमारे सुदेशपुर में एक पक्का कूआं है जो स्वर्गवासी लाला श्रीदयाल ने अपने पहले लड़के के पहले जन्मदिन पर बनवाया था। उस कूएं पर सुदेशपुर की औरतें और लड़कियां पानी भरने आती हैं, परन्तु प्यार और मुहब्बत की कोई दास्तान जन्म नहीं लेती, जैसा कि आमतौर पर दूसरी जगहों में होता है। इस नाचीज़ ने बहुत सी किताबों में ऐसी दास्तानें पढ़ी हैं।

(आर्थिक पृष्ठभूमि)

मेरे 'एंट्रंस' पास करते ही मेरे पिता जी स्वर्ग सिधार गये। वह तहसील में बयालीस रुपये महीना पर मुहर्रिर थे। उनके स्वर्गवास होने पर जनाब तहसीलदार साहिब बहादुर ने दया करके मुझे उनकी जगह दे दी, परन्तु मैं नातजुर्बेकार और अनाड़ी था इसलिए वेतन सिर्फ बाईस रुपये ही मुकर्रर किया गया · अब यह तनख्वाह बढ़ कर बानवे रुपये हो गई है। भगवान् का लाख लाख शुक्र है। नौकरी करते अभी मुझे छः ही महीने हुए थे कि मेरी शादी, पास के ही गांव के नम्बरदार, लच्छी राम जी की सुपुत्री सीता देवी से हो गई। अब हमारी शादी को सत्रह वर्ष हो गए हैं और मैं चार लड़कों का बाप हूं और मेरी धर्मपत्नी तीन लड़कियों की मां बन गई है। सब मिला कर हमारे सात बच्चे हो चुके हैं। भगवान् की हम पर अपार कृपा रही। नौकरी के आठवें बरस उक्त तहसील में तबदीलियों का सिलसिला आरम्भ हो गया। जिस कारण मुझे बाहर की तहसील में भेज दिया गया। और नौ बरस से मैं इसी स्थान पर हूं। चूंकि हमारे सुदेश-

पुर में चीजें सस्ती मिलती थीं, मकान का किराया भी नहीं देना पड़ता था, बाप के ज़माने की एक गाय भी थी और सब्जी-तरकारी पैदा करने के लिए जमीन का एक टुकड़ा भी था, इसलिए आर्थिक अभाव का अनुभव कभी न हुआ था। परन्तु शहर में आकर तंगी का सामना करना पड़ा। यहां तक कि महीने के आखिरी दिनों में लगभग फाकों की नौबत आ जाती है। मगर नाचीज़, उस परिवार की आंखों का तारा है जहां बचपन से ही उपयोगिता का पाठ पढ़ाया जाता था। इसलिए मैंने बचपन मे सीखे हुए इसी पाठ का पालन किया और हमारी दशा सुधर गई। अब भगवान् की दया से दोनों वक्त खाना मिलता है और फाकों की बारी नहीं आती। रही दूध और लस्सी की बात, तो इन चीज़ों की आदत हमने छोड़ दी है, इसलिए कोई आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। सारांश यह कि भगवान् की दया हम पर सदा से ही रही है।

(राजनैतिक पृष्ठभूमि)

एक सरकारी कर्मचारी पर यह फर्ज़ लागू होता है कि वह राजनीति के साथ बिना कारण अथवा कारणवश कोई सम्बन्ध न रखे। अत: मैं उक्त विद्वान् के कहने पर भी इस दास्तान की राजनैतिक पृष्ठभूमि लिखने से मज़बूर हूं, इस लिए क्षमा चाहता हूं।

(लिखने का कारण)

सज्जनो,

इस दास्तान को लिखने का सबसे बड़ा कारण यह है कि जब से इस दास्तान का जन्म हुआ है, मेरे दिल में एक प्रकार की घुटन सी उत्पन्न हो गई है। दिन को तहसील के कामों में उलझा रहता था इसलिए ध्यान इस ओर कम जाता था, परन्तु रात को यह घुटन ज़ोर पकड़ लेती थी। कई मास इस बीमारी में पड़ा रहा। धर्मपत्नी से कहा, किन्तु उसने भी इस ओर ध्यान न दिया आखिर एक रात जब यह घुटन बहुत ही ज़ोर पकड़ गई तो मैं यह दास्तान लिखने बैठ गया। लिखने के पश्चात् अनुभव किया कि मेरे सीने से एक भारी बोझ उतर गया है।

नोट—यदि यह दास्तान पढ़ने के पश्चात् आप भी अपने दिल पर बोझ सा अनुभव करें तो इस नाचीज़ का यही परामर्श है कि आप भी अपनी दास्तान लिख डालिए। बोझ निश्चय ही उतर जाएगा।]

—लब्बूराम

(सारांश)

जैसा कि पहले प्रार्थना कर चुका हूं कि नौकरी के आठवें वर्ष मुझे शहर में तबदील कर दिया गया। मैंने शहर के एक मुहल्ले में सात रुपये महीने पर एक मकान का प्रबन्ध किया। शहर में मकानों की तगी के कारण हमने गनीमत समझा और उस में रहने लगे। मकान की हालत बहुत खराब थी और उस की छत टपकती थी और उस में धूप तो क्या, हवा का भी गुज़र मुश्किल से ही होता था, परन्तु हम ने इस ओर कम ही ध्यान दिया। हमारे पड़ोस में एक और मुहर्रिर रहता था जो सिंचाई विभाग में काम करता था। उसकी एक धर्मपत्नी थी और वे तीन लड़कों और तीन लड़कियों के मां-बाप बन चुके थे। अब उन के परिवार में एक और लड़की की वृद्धि हो चुकी है। जैसा कि औरतों का स्वभाव है—मेरी पत्नी और मुहर्रिर की पत्नी शीघ्र ही एक दूसरी से हिलमिल गई और दो वर्ष तक हम लोग बड़ी खुशी से रहे, परन्तु जैसा कि औरतों का चलन है—मेरी पत्नी और उस मुहर्रिर की पत्नी की आपस में एक बार कहा-सुनी हो गई और फिर लड़ाई-झगड़े तक बात आ पहुंची। उस दिन जब मैं तहसील से घर आया तो देखा कि धर्मपत्नी एक कोने में मुंह फुलाए बैठी है। मैंने पूछा—

"क्या हो गया ? मुंह फुलाए क्यों बैठी हो ?"

वह भड़क उठी—"पूछते हो क्या हो गया ? जो न हो जाए थोड़ा है।"

"आखिर बात क्या है ? कुछ मैं भी तो सुनूं !"

मैंने आश्चर्य से पूछा तो कहने लगी—

"तुम अब सुन कर क्या करोगे ? तुमने तो उसी दिन हातिम की कबर पर लात मार दी थी जिस दिन मुझे ला कर इस मकान में डाल दिया था। मैं पहले दिन ही भांप गई थी कि यह औरत नीच है। तुम यहां होते तो देखते कि किस प्रकार बढ़-चढ़ कर बोलती है। जैसे किसी बैरिस्टर की पत्नी हो। परन्तु यहां कौन उस से दबता है ? बड़ी होगी तो अपने घर में ! मैं भी अपने घर की रानी हूँ।"

"परन्तु भाग्यवान् ! तुम दोनों की तो आपस में खूब बनती थी। अब क्या हो गया ?"

"हो गया है उस के होते-सोतों को ! मुझे क्यों होता कुछ ? मेरे साथ बात चीत बन्द करेगी तो यहां किस की जूती को परवाह है।"

इतना कह मेरी धर्मपत्नी रोने लगी और मेरे कम वेतन को कोसने लगी। मैंने अपने तौर पर जब सारी बात की जांच-पड़ताल की तो पता चला कि

हमारे पड़ोसियों के घर में कोई मेहमान आया था, जिस के लिए चाय बनाने के लिए, सिचाई विभाग के मुहर्रिर की पत्नी, मेरी धर्मपत्नी से थोड़ी सी चीनी मांगने आई थी और मेरी पत्नी ने देने से इन्कार किया था और कहा था कि हमारे घर में भी समाप्त हो चुकी है। तो उसने हंसी उड़ाने के भाव से कह दिया कि तुम लोग भी हमारी भाँति कंगाल ही निकले। बस फिर क्या था, पहले आपस में मैं-मैं तू-तू हुई और उसके बाद झगड़ा हो गया और उसके पश्चात् सम्बंध टूट गए। बात ज़रा सी थी, परन्तु बढ़ गई। इन दोनों औरतों ने तब से फिर कभी एक दूसरी से बात न की, परन्तु अपनी-अपनी जगह एक दूसरी को तानें देती रहीं, कोसती रहीं। खैर, औरतों का स्वभाव ही ऐसा होता है, इसलिए मैंने और सिचाई विभाग के मुहर्रिर ने इस ओर ध्यान न दिया और कोई दो वर्ष इस प्रकार बीत गए।

एक दिन नित्य की भांति, मैं जब तहसील के कामों से फ़ारिग़ होकर घर लौटा तो मेरी धर्मपत्नी मेरी चिलम भरने लगी, जो उसने पहले कभी नहीं भरी थी और पूछने लगी—

"यह राधा का पति कितना वेतन पाता है?"

"मेरे ही जितना पाता होगा!" मैंने उत्तर दिया।

"तुमने कुछ सुना? उसने रेडियो खरीद लिया है। आज दिन भर बजाती रही है।"

"हां, तो खरीद लिया होगा! इसमें क्या है?"

"हम भी एक खरीदेंगे।"

"परन्तु पैसे कहां से आएंगे?" मैंने उत्तर दिया।

"वे कहां से लाए?" उसने कठोरता से पूछा।

"मैं क्या जानूं? लाए होंगे कहीं से।" मैंने इतना ही कहा था कि वह भड़क उठी।

"तुम तो जन्म के ही निकम्मे हो। नौकरी करते-करते इतने साल बीत गये परन्तु एक रेडियो तक न खरीद सके। कभी मुझे एक बाली तक न बनवा दी। बच्चों के तन पर अलग फटे-पुराने कपड़े लिपटे पड़े हैं। तुम नौकरी करते हो या घास काटते हो?" यह कहकर मेरी धर्मपत्नी रोने लगी। अपने गांव में कभी यहां तक बात न पहुंची थी, इसलिए मैं परेशान हो उठा। हुक्का गुड़गुड़ाते हुए, मैं सोचने लगा—मेरी धर्मपत्नी जो कुछ कह रही है वह ठीक ही है। मैंने ध्यान से अपनी दशा को एक बार फिर परखा। बच्चों के फटे-पुराने कपड़े देखे।

धर्मपत्नी की जीर्ण-शीर्ण अवस्था देखी और अपने सत्रह वर्षीय कोट की तहें टटोली।

अपने वेतन का हिसाब कर के देखा। जिसमें से महीने भर के राशन, सब्ज़ी तरकारी, तेल इत्यादि पर खर्च कर के कुल नौ रुपये बचे थे। नौ में से भी केवल दो रुपये ही बचते थे, क्योंकि सात रुपये मकान का किराया देना पड़ता था और बाकी दो रुपये में मिट्टी का तेल, भंगन का खर्च, तम्बाकू और ऐसी ही कई और वस्तुएं आती थीं। आती क्या थीं, भगवान् की अपार कृपा ही साथ देती थी।

उस दिन से नित्य हमारे घर झगड़ा होने लगा। कभी धर्मपत्नी कहती कि उसे जुकाम हो गया है, चार छ: आने की दवा चाहिए। मैं नित्य की भांति खाली जेब दिखाता तो कहती—"राधा नई साड़ी लाई है। नये कपड़े बनवाये हैं और तुम चार आने की दवा को भी तरसाते हो।" कभी कहती—'रुकमनी (अर्थात् हमारी लड़की) का दुपट्टा तार-तार हो गया है।" मैं अपनी विवशता जताता तो कहती, "फिर जन्म ही क्यों दिया था इसे ?" धीरे-धीरे ऐसी बातों ने मुझे निढाल कर दिया और मैं सोचने लगा कि अवश्य ही मुझ में ही कोई दोष है जो उस सिंचाई विभाग के मुहर्रिर में नहीं है। अत: मैंने निश्चय कर लिया कि मैं इस विषय में जांच पड़ताल करके दम लूंगा। जब मैंने इस बात की जांच की तो पता चला कि मेरा पड़ोसी अर्थात् सिंचाई विभाग का वह मुहर्रिर बड़ा खतरनाक आदमी है। रिश्वत लेता है। जिस से सारी चीज़ें आती हैं। तोबा! हरे राम!

मैंने धर्मपत्नी से कहा तो बजाए इसके कि वह मेरी तरह 'हरे राम' कहती, उस ने मुझे झिड़क दिया।

औरत की अक्ल एड़ी के पीछे तो होती ही है, अत: कहने लगी—"रिश्वत लेता है तो कौन सी बुराई करता है ? तुम से इतना भी नहीं हो सकता।"

जब मैंने अपनी विवशता प्रकट करके धर्मात्मा पीढ़ियों का प्रसंग चलाया, जिनमें रिश्वत लेना महापाप समझा जाता था, तो उसने मुझे और भी झिड़का और यहां तक धमकी दी कि यदि मैंने रिश्वत लेना शुरू न कर दिया तो वह सात बच्चों को मेरे हवाले करके नदी में छलांग लगा कर अपने इस दुःखपूर्ण जीवन का अंत कर लेगी बहुत देर तक बहस चलती रही और अंतत: मुझे ही हार माननी पड़ी और वचन देना पड़ा कि मैं भी अब रिश्वत लेना आरम्भ कर दूंगा। यह भी निश्चय हुआ कि मैं कल से प्रति दिन मन्दिर में दीप जलाना आरम्भ कर दूंगा

ताकि रिश्वत लेने के पाप का बोझ साथ-साथ हल्का होता जाए।

दूसरे दिन मैं तहसील में पहुंचा तो मन में ठान ली कि आज अवश्य ही किसी न किसी से कुछ लेकर ही छोड़ूंगा और तत्क्षण ही भगवान् की कृपा से एक व्यक्ति किसी भूतपूर्व फैसले की नकल लेने मेरे पास आ पहुंचा।

"आपको नक़ल नहीं मिल सकती।" मैंने उसका प्रार्थनापत्र पढ़ कर कहा।

"क्यों नहीं मिल सकती?" उसने पूछा।

"इस लिए कि मैं आज व्यस्त हूं। कुछेक अत्यावश्यक मिसलें तैयार करनी हैं।"

"परन्तु मुझे तो नक़ल आज ही चाहिए, नहीं तो बात बिगड़ जाएगी।"

"मैं मजबूर हूँ।" मैंने उत्तर दिया, क्यों कि रिश्वत लेने वाले ऐसा ही उत्तर देते हैं।

"दया करो, मेरा बहुत नुकसान हो जाएगा।" उसने विनती की और मैंने रिश्वत के लिए उचित समय देखा और कहा—"केवल एक सूरत में हो सकता है।"

"कोई सूरत निकालिए। मैं शुक्रगुज़ार हूँगा।"

"आप को शुकराने के तौर पर पांच रुपये देने पड़ेंगे।"

यह सुन कर वह व्यक्ति मेरी ओर देखता रहा। सम्भव है मैं उसे एक तजरुबाकार रिश्वतखोर नज़र नहीं आ रहा था।

"आप नक़ल तैयार कीजिए। मैं रुपए अभी लाता हूँ।" उसने कहा और मेरी जान में जान आई। थोड़ी देर के बाद जब वह आया तो मैंने नक़ल तैयार कर रखी थी। केवल तहसीलदार साहिब के हस्ताक्षर करवाने शेष थे। उसने आकर पांच रुपये का नोट मेरी जेब में डाल दिया। मैंने नोट निकाल कर अन्दरूनी जेब में रखा और कागज़ लेकर तहसीलदार साहिब के पास चला गया। तहसीलदार साहिब ने हस्ताक्षर कर दिये। मैं नक़ल उठा कर जाने ही वाला था कि उन्होंने पूछा—"लब्बू राम! तुम नक़ल तैयार करने के लिए आसामियों से कितने पैसे लेते हो?"

"कुछ नहीं जनाब! यह तो मेरा काम है!" मैंने उत्तर दिया।

"तुम्हारी जेब में कितने रुपयें हैं?" उन्होंने दूसरा प्रश्न किया।

"पांच रुपये" मैंने उत्तर दिया।

"कहां हैं वे पांच रुपये ?" उन्होंने तीसरा प्रश्न किया।

और उत्तर में मैंने अन्दर की जेब से वह पांच रुपये का नोट निकाल कर दिखाया। उन्होंने नोट लेकर देखा और फिर मुझे दिखाते हुए पूछा—"यह क्या है ?"

मैंने देखा और कांपने लगा। नोट के एक कोने पर तहसीलदार साहिब के हस्ताक्षर थे। मेरी टांगे जवाब देने लगीं। तहसीलदार साहिब ने उसी समय हैडक्लर्क को बुलाया और मेरी मुअत्तली का आदेश लिखवाया।

जब मैं नौकरी से मुअत्तल होकर घर आया तो मेरी धर्मपत्नी हंसी की मूरत बनी बैठी थी। मेरे तन-बदन में आग लग गई, परन्तु मैं चुप रहा। उसने पूछा—

"सुना कुछ तुमने ?" मैंने कोई उत्तर न दिया।

"राधा के पति को पुलिस पकड़ कर ले गई। आज घर की तलाशी भी हुई थी।"

मैं फिर भी चुप रहा।

"सुना है सरकारी पैसे का ग़बन किया है।

मैंने इस पर भी कुछ न कहा।

"तुम बोलते क्यों नहीं ?" मेरी धर्मपत्नी ने आश्चर्य से पूछा।

"आज तेरे पति को मुअत्तल कर दिया गया है।" मैंने जल-भुन कर कहा।

"हाय राम ! हमारे शत्रुओं को क्यों मुअत्तल किया ?"

"रिश्वत लेने के जुर्म में।" मैंने उत्तर दिया।

मेरी धर्मपत्नी पहले तो चुप रही। फिर उसका चेहरा लाल हो गया। इस के पश्चात् उसकी आंखें भर आईं और फिर आंसुओं की झड़ी सी लग गई।

"मेरे भाग्य उसी दिन फूट गये थे जिस दिन मैं तुम से ब्याही गयी थी। तुम तो जन्म के ही निकम्मे हो। तुम्हें रिश्वत लेना भी न आया।"

(अंतिम नोट)

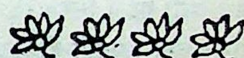
सज्जनो !

मुअत्तली के एक महीना पश्चात् तहसीलदार साहिब ने मुझे बहाल कर दिया। जिस दिन मुझे बहाली का आज्ञा-पत्र मिला, उस दिन हैडक्लर्क ने मुझे अपने पास बुला कर कहा—

"लब्बू राम! तुम फिर से नौकरी पर बहाल किए जाते हो। क्या मैं उम्मीद करूं कि तुम फिर कभी ऐसी गल्ती नहीं करोगे?"

आंसू—
भीगे
चावल

चंचल शर्मा



आंचल में कुछ छुपाए भोली ने आंगन में प्रवेश किया, तो गिरधारी को खटिया पर देखकर ठिठक गई क्षण भर के लिए। गिरधारी हुक्के के लम्बे कश भरता हुआ कुछ सोच रहा था। अचानक खांसी के धचके ने जो उसे दबोचा तो बस खांसते खांसते उसकी आंखों में आंसू छलकने लगे। कहां तो भोली आंख चुरा कर निकल जाना चाहती थी कि कहां उसे एकाकी इस बुरी तरह खांसते देखकर चौंक उठी। आंचल में लिए चावल उसके हाथ से गिर कर दाना दाना बिखर गये। और वह दौड़ कर आंगन पार करती अन्दर जा पहुँची। चाची चूल्हे के पास रोटियां सेंक रही थी। उससे बात किए बिना गिलास में पानी भरा। गिलास तो भर गया, पर घड़ा भी साथ ही जमीन पर आ गिरा। घड़े के टूटने की आवाज़ ने चाची को चौंका दिया। वह उसे आवाज़ें देने लगी, "अरी, क्या हुआ बन्नो ?" पर भोली—यह जा वह जा, रसोई से भाग गई। चाची उसी के पीछे आंगन में पहुँची तो वह गिरधारी की पीठ सहला रही थी...और पानी का गिलास उसके मुंह के साथ लगा था।

जब तक चाची पास पहुँचती गिरधारी की दशा में काफी सुधार आ गया था। गिलास रखती हुई भोली कहने लगी, "कई बार तो बोल चुकी हूं कि चाची, यह निगोड़ा तम्बाकू मत पीने दिया कर—पर मेरी अब कौन सुनेगा। पराई जो हूं।" चाची की आंखों में आंसू डबडबा आए। वह कुछ उत्तर न दे

पाई। गिरधारी बोला, "नहीं भोली, यह बात नहीं.. तुम क्यों ऐसा सोचती हो ? यह तो अब शरीर ही पतला पड़ गया है . जब बात करने को कोई नहीं मिलता तो हुक्के की गुड़गुड़ से जी बहला लेता हूँ। अब तो इसमें भी रस नहीं मिलता।" गिरधारी की सांस फूली थी, इतना कहकर वह सुस्ताने लग गया। चाची पूछने लगी—"तुम कब आयी, बन्नो ? चल अन्दर, तुम्हारे घर से किसी ने देख लिया तो तुम पर आफत आ जाएगी।" "कुछ चावल लाई थी चाची तुम्हारे लिए। क्या इसको अकेले ही दुःख है चाची, और कोई दुःखी नहीं है ?" इतना कहते भोली फूट कर रो पड़ी। चाची के कन्धे पर स्वयंमेव उसका सिर जा टिका। चाची ने थपथपाते हुए कहा, "रोते नहीं पगली...तुम्हें देखकर तो हम दोनों जी रहे हैं।" भोली चाची के कन्धे से अलग होती हुई बोली, 'चलो अन्दर चाची, तुम्हारी रोटी जल गई।" "अरी हां, यह तो मैं भूल ही गई।" इतना कहते हुए चाची अन्दर की ओर लपकी—भोली भी उसीके पीछे पीछे चली गई। गिरधारी धीरे धीरे खटिया से उठा और बिखरे चावलों को बीनने लगा। पहली ही मुट्ठी भर कर उसने चावल आंखों से लगाए। होंठों से उन्हें चूमा, माथे से लगाया और फिर फांक लिया। अपनी गोदी पसार कर बाकी के चावल उसी में इक्ट्ठे करने शुरू किए। मुंह में पड़े दाने दान्तों से टकरा कर कुड़कुड़ बोल रहे थे—देखो हम कितने मीठे हैं उससे भी मीठे जो हमें घर से चुरा कर लाई है, उसके बोलों से भी मीठें। उसकी याद की तरह, जो हमेशा तुम्हारे दिल के दर्द और कसक पर फाहा सा रख देती है। हां, उसके हाथों को छूकर चावल सचमुच कलाकन्द की तरह मीठे हो जाते हैं। यह चावल तो भोली मेरे लिए तब से लाती है जब वह गुड़ियों से खेला करती थी—नहीं, जब वह स्वयं गुड़िया थी। ओह, उसकी लाल गालों पर बांकू की पांचों उंगलियां इन्हीं चावलों के कारण तो पांच दरयाओं का नक्शा बना गई थीं। मानो धान के खेतों को सैराब कर रहीं हों। हां, इन्हीं चावलों के लिए मेरी बन्नो ने कितने कष्ट सहे हैं। यह चावल मुझे कितने प्रिय हैं; वह भली भान्ति जानती है। चावल मेरे लिए लाती हैं और बहाना चाची का "चाची तेरे लिए चावल लाई हूँ।"—और हर बार चाची मुस्कराकर कहती है, "तू बहुत अच्छी है, बन्नो। मेरा कितना ध्यान रखती है। भगवान् तुम्हें इसके बदले बड़ा सुन्दर वर देंगे !" और फिर बन्नो मेरी ओर देखती और अंगूठा दिखा देती। यह सब सोचते-सोचते गिरधारी के हाथ कभी तो चावलों को बीनते और कभी मिट्टी और कंकर समेट लेते। "अरे, यह क्या करते हो छोड़ दो इन्हें, यह गन्दे हो गए हैं।" भोली अचानक कमरे से बाहर आकर

गिरधारी को चावल बीनते देखकर बोली, "कहां गंदे हो गए ? साफ तो हैं। मैं और लादूंगी । तुम इन्हें रहने दो । चलो अन्दर चाची बुलाती है...खाना खा लो ।" "नही, चाची से कह दे मैं आज खाना नहीं खाऊंगा । चावल जो आ गए हैं ।" भोली मुस्करा उठी, "अरे चावल तो हमेशा आते हैं और आते रहेंगे । अभी तुम चलो न, अन्दर तो चलो ।" वह उसे घसीटती सी अन्दर ले गई ।चाची ने थाली लगा दी थी । राजमाश की सून्धी खुश्बू और उस पर भी गिरधारी खाने नहीं बैठ सका,"चाची आज भूख नहीं है–सच कहता हूं, सुबह ही से जी मतला रहा है । यह चावल बड़े मीठे हैं, ले तू भा फांक के देख ।" मुट्ठी भर कर उसने चाची के मुंह में ठोंस दिए । चाची ने ज्यों ही दांत चलाये कि एक कंकर दाढ़ तले टूटा । दाढ़ हिल गई । चाची चावलों को थूकते हुए बोली—"क्या यही चावल लाई है, बन्नो ?" अन्तिम शब्द चाची ने गिरधारी से ठिठोली करने के लिए कहे थे । "नहीं चाची, यह तो मैं ही पागल हूं और...इस बेचारी का इस में, क्या दोष ? कुछ न कहा करो" चाची, "यह तो अब बेगानी है ।" भोली ने वाक्य पूरा कर दिया । उसकी आवाज़ में रोष और व्यंग्य, दोनों भरे थे । गिरधारी खिसिया सा गया, "यह बात नहीं, अब हमारे रास्ते अलग हैं न । मैं, देख तो कितनी तेज़ चाल से जा रहा हूं अब न जाने...।" भोली की आंखें रुआंसी थीं...और वह गिरधारी की ओर एक टूक निहारे जा रही थी । गिरधारी ने उसे इस दशा में देखा और एक लम्बी सांस भरी—"भोली, तुम जाने क्या समझ लेती हो ? मुझे तुम से कोई शिकायत नहीं ! तुम्हारा इसमें क्या दोष ? यह तो पिछले जन्म में मैंने जो पाप किए थे, उन का फल पा रहा हूं । काश ! मैं अपने दिल पर काबू पा सकता ।" गिरधारी की सांस फिर तेज़ हो गई । वह हांफने लगा । भोली तेज़ी से बढ़ कर उसकी पीठ सहलाने लगी । चाची यह देख झट से बोल उठी—"हाय, मेरी किस्मत ! क्या हो गया मेरे घर को ? इसे कितनी बार कहा किसी डाक्टर को बुलाती हूं पर, मानता ही नहीं, कहता है ठीक हो जाऊंगा, फिकर न कर चाची । पर यह निगोड़ी बीमारी इसका पीछा छोड़ने में नहीं आती ।" "पानी दो चाची ।" चाची ने लपककर पानी भरा.और भोली के हाथ में थमाते हुए याचना भरे शब्दों में बोली, "कुछ तुम ही समझा दो बन्नो इसे ! यह तो देह का अन्त करके अपने दुःखों से छूट जायेगा, पर मेरा क्या होगा ?" "क्या देह का अन्त करके दुःखों से बचा जा सकता है, चाची ?" गिरधारी ने टूटते शब्दों से प्रश्न किया–"कौन जाने क्या होता है पर जो चले गये उनके बारेमें सब यही कहते हैं कि दुःखों से छूट गये ।" "नहीं चाची, मेरे तो सब सुख यहीं हैं इसी दुनियां में, इसी धरती पर ! देख ना, यह चावल ! क्या मुझे उस लोक में मिल सकेंगे ? इन

की मिठास तो मुझे मरने भी न देगी।" "गिरधारी", भोली एक दम चीख पड़ी। "पगली, क्या हो गया तुझे, तुम क्यों रोती हो ? कभी मुद्दतों बाद तुम आती हो और फिर भी रोती हो ? मैं तो तुम्हें बरसों ही हंसते देखना चाहता हूं। मुझ से लड़ती भी नहीं। आज कल रूठती भी नहीं—हमेशा मुझ पर तरस खाती हो। मैं, मैं तुम्हारा तरस नहीं—प्रेम चाहता हूं।" "हाय, मैं क्या करूं। भगवान् ने अन्याय तो मुझ से कर डाला है.. न रो सकती हूं, न किसी को सुना सकती हूं। और न मर ही सकती हूं।" गिरधारी ने अपना हाथ भोली के मुंह पर रख दिया और गुस्से में बोला - "बस बन्नो, मुझ से यह सब कुछ नहीं सुना जायेगा।" अपने अन्तिम शब्द दोहराता गिरधारी धीमे-धीमे बाहर चला गया। कुछ क्षणों के पश्चात् भोली ने आंसू पूंछे और चुपचाप चली गई। आंगन में खाट पर लेटे आकाश की ओर निहारते गिरधारी को उस ने एक नज़र से देखा, कुछ कहने को ठिठकी पर दूसरे ही क्षण कुछ सोचती हुई चुपचाप आगे बढ़ गई।

आकाश पर बादलों की बारात सज रही थी। घनघोर-घटाटोप बादलों की गरज कभी-कभी ढोल की तरह ध्वनिकार हो उठती। कभी छींटे क्यौड़े का छिड़काव करते और कभी बिजली चमक कर फुलझड़ियों की चकाचौन्ध सा प्रकाश फैलाकर क्षण में लुप्त हो जाती। सावन का महीना था। भरी दोपहर में भी अन्धेरा छा रहा था। दालान में अकेला गिरधारी चावलों को साफ कर रहा था। उसने चावल बड़ी सी थाली में बिखेर रखे थे और एक-एक दाना अलग किये जा रहा था। चाची शायद कुंए से पानी लेने गई थी। और घर में वह अकेला विचारों के संसार में सपने ले रहा था। कभी चावल फांक लेता और फिर दानों को अलग करने लग जाता। हर एक दाना उसे अपने जीवन की कड़ी दिखाई दे रहा था। हर दाने में उस का स्नेह लिपटा था। उस के दिल की धड़कनें छिपी थीं – और वह उन्हीं धड़कनों को पैनी निगाह से देख रहा था। बड़े यत्न से संवार रखी थीं उसने वह अतीत की स्मृतियां—जो एक एक कर के उसे याद आ रही थीं—उसे याद आया वह दिन जब भोली चावलों की पोटली लिए छिपते-छिपते उसकी कोठरी तक आई थी और धीरे से कहने लगी, "ले यह चावल।" "हम नहीं लेंगे," गिरधारी ने उत्तर दिया था। "ले ले ना ! तुम्हें सौं लगे।" भोली ज़िद कर रही थी। गिरधारी ललचाई नजरों से चावलों को देख रहा था फिर भी कहे जाता—"तुम्हारे बापू को पता चला तो वह मारेंगे। वे मुझ से घृणा करते हैं।"

"किसी को कौन जाने !" भोली ने आह भरी—"पर तू क्यों चिन्ता करता है। मैं तो तुझे प्यार करती हूं—सच, बहुत प्यार करती हूँ। गिरधारी,

देख तभी तो मैं तेरे लिये अच्छे अच्छे चावल लाती हूँ।" "जब तेरे बापू नहीं चाहते तो तेरे चाहने से क्या होता है? तू किसी और की हो जाएगी...फिर चली जायेगी, तब मैं चावल कहां से लूंगा। फिर मुझे बहुत दुःख होगा। नहीं भोली, तू ले जा इन्हें, मेरे लिए चावल न लाया कर।" गिरधारी उदास सा हो गया, अनमना सा। भोली तड़प उठी, "नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगी। मैं सदा सदा तुम्हारी ही रहूँगी।" गिरधारी की आँखों से आंसू गिरने लगे। चावल भीगने लगे। उसने कुछ चावल हाथ में उठाये और फांक लिये। आंसूओं का नमकीन स्वाद जब उसकी जिह्वा ने चखा तो उसे होश आया। वह रो रहा था। यह मीठी याद में बहे हुये आंसुओं का स्वाद था। उसने धोती से आंसू पोंछे और चावल बीनने लगा। उसे याद आया वह दिन जब वह जमादार रोमालसिंह के सामने खड़ा था। जब उसने अपने गांव का नाम बताया तो जमादार ठहाका लगाकर हंसने लगा—"अच्छा, तो तुम हमारे साले हुए। वहां तो हमने शादी की है। उसी गांव में बांकू जमींदार की लड़की है,—भोली आजकल मायके गई है।" और गिरधारी पर मानों सैंकड़ों मार्टर एकदम गिर पड़े हों, बड़ी कठिनाई से उसने अपने आपको सम्भाला था और जब जमादार ने उससे पूछा तुम उसे नहीं जानते क्या?" तो उसने झट कह दिया था "नहीं" फिर वह सोचने लगा था उसने झूठ क्यों बोला। फिर भी गिरधारी फौज में जमादार रोमालसिंह का बहुत ध्यान रखता था। जब कभी उसे दुःख होता, तो वह उसकी बहुत सेवा करता था। फिर एक बार रोमालसिंह घर छुट्टी चला। उसने गिरधारी से भी अनुरोध किया कि वह भी उसके साथ चले पर वह टाल गया था। उसे बड़ी सान्त्वना मिली थी जब उसे पता चला कि भोली ने भी रोमाल सिंह से कह दिया था कि वह गिरधारी को नहीं जानती।

चुशूल के मोर्चे पर जब रोमालसिंह को गोली लगी थी—उफ! गिरधारी को चेतना हो आई कि वह कितना घबरा गया था। होश खो बैठा था। मौत की हिचकियां गिनता हुआ रोमालसिंह स्वयं हैरान था कि गिरधारी को क्या हो गया। वह अपनी पत्नी को गिरधारी के हाथ अन्तिम सन्देश भेजना चाहता था पर गिरधारी बेहोश था। उसके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था और जब उसे कुछ होश आया तो रोमालसिंह को मरे दो महीने हो चुके थे। डॉक्टर ने उसे भी फौज से छुट्टी दिला दी थी और वह चाची के पास आ गया। चाची ने उसे कलेजे से लगा लिया।

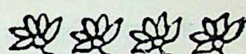
गिरधारी की आंखों में आंसू आ गये। उसकी सांस फूलने लगी और तभी उसे पता चला कि भोली उसकी पीठ सहला रही है—"क्या बात है

गिरधारी ? कब से गहरी सोच में डूबे क्या सोच रहे हो ?''."तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था—क्या हो गया यह सब ? देखते ही देखते कितने युग बीत गये और सारा दुःख सारी खुशियां बहा के ले गये ? यह कैसा न्याय है ? किस का न्याय है यह ?'' भोली की आंखों में अश्रुधारा प्रवाहित थी और गिरधारी कहे जा रहा था—"ऐसा क्यों हो गया भोली ? कितने सपने सजाये थे तुम ने !'' "नहीं गिरधारी, मैं बहुत अच्छी हूं। देख, तेरे पास हूं। तेरी तो हूं, पराई तो नहीं—तू अच्छा हो जा ?'' और गिरधारी व्यंग्य-भरी मुस्कान से बोला,—"अच्छा क्या खाक हो जाऊंगा अब ? अरी, अब तो चलने की तैयारी है ? अगले जन्म में जरूर तुम्हें पा लूंगा। बहुत जन्मों से तपस्या कर रहा हूं, पर तू बड़े दूर के भाग्य की वस्तु है। देख इतने जन्म तपस्या की है न, तो तेरे इतने करीब आ गया ! तेरे हाथ से चावल भी खाये हैं—और अब आशा हो चली है कि अगले जन्म तो तू मेरी ही होगी। हां, इसी लिये तो जल्दी इस जन्म का अन्त——'' "शी !'' भोली ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया। गिरधारी की सांस और तेज़ हो गई थी। बिजली जोर से चमकी और ज़ोर की गड़गड़ाहट से किसी वृक्ष पर पड़ी। बाहर आंगन में चाची के सिर से घड़ा गिरा और टूट गया। गिरधारी की गर्दन लुढ़क कर भोली के कन्धे पर आ गिरी और भोली ज़ोर से चीख मार कर बेहोश हो गई।

—

एक पत्ता पतझड़ का

नरेन्द्र खजूरिया



मैं लौट रहा था। अभी कुछ क्षण पहले इसी सड़क से वह बस दनदनाती हुई गुजरी थी, जिस पर मैं छः महीने से कण्डक्टर था। सहसा, बात का बतंगड़ बना और मेरी नौकरी का पहिया – जो प्रायः पंक्चर ही रहता है, एक बार फिर पंक्चर हो गया और बस श्रीनगर की ओर चली गई। पतझड़ के पीले पत्तों का रेला देर तक बस के पीछे भागता रहा। मैं धीरे-धीरे पग बढ़ाते हुए एक पुलिया पर आकर बैठ गया। बेकारी के बावजूद मन में कहीं भी कोई खीझ नहीं थी। जैसे मैं अपनी जानी पहचानी दुनिया में एक बार फिर लौट आया था। जहां भूख तो थी मगर खुला आकाश था। फैली हुई धूप थी।

अचानक बीन के स्वर गूंज उठे। मैंने देखा, सामने की पगडण्डी से एक बारात चली आ रही थी। एक समय था जब बारात का बैंड सुन कर मन खुशी से नाच उठता था। अब जबकि मैं तईस वर्ष का हूँ यह आवाज सुनकर कुछ अजीब-सा लगता है। अपने आप में जाने क्यों एक शर्म-सी अनुभव होती है। एक झिझक जैसे मेरी अपनी बारात हो। बिना किसी उत्साह के मैं उसी ओर देखता हूं। बीन बजाने वाले के फूले हुए गाल, बारातियों की गहरे रंगों में रंगी हुई पगड़ियां। कोरे लट्ठे के पाजामें, जिनकी चूड़ियों पर बारीक धूल की परतें जमी हुईं। तेल से लैस देसी चमड़े की नोकदार जूतियों की 'चरीं चरीं' और एक मरियल-सी घोड़ी पर तनकर बैठा हुआ दूल्हा।

पुलिया के साथ मिलती खुली जगह पर वे आकर रुक गए। शायद बस की इन्तज़ार में। एक ओर कम्बल बिछा कर एक चौकड़ी जम गई। देसी शराब की बोतलें-कारक की बजाए जिनको मक्की के गुदों से बन्द किया हुआ था—खुल गई। घर में ही बनाई हुई घटिया किस्म की शराब की खट्टी सी गन्ध धीरे-धीरे आस पास के वातावरण में फैलने लगी। दूल्हा ने दोनों हाथों से पकड़ कर गिलास होठों से लगाया। कुछ क्षण पहले सेहरे की लड़ियों से ढके जिस चेहरे की मैंने कल्पना की थी, अब वहां केवल एक कसा हुआ चेहरा था। जिस पर गहरे चेचक के दाग़ थे। एक आंख खुली की खुली,शायद कांच की ! मुंह बन्द होनेपर भी सोने के दांत का आगे बढ़ा हुआ सिरा चमक रहा था। इन सब से अलग एक ओर दो बूढ़े असहाय भाव से फुसफुसा रहे थे। उनके मुंह पर अनिश्चितता की छाप स्पष्ट दिखाई दे रही थी। जैसे वे कोई आवश्यक वस्तु कहीं रास्ते में ही खो आए हैं।

बीन बाजा फिर बज उठा। पीने-पिलाने वाली चौकड़ी में से एक युवक, जिस के बाल फौजी ढंग से कटे हुए थे, बीन के स्वर पर झूम-झूम कर नाचने लगा। दूसरे बैठे हुए वाराती तालियाँ पीटने लगे। युवक उतनी देर तक नाचता ही रहा, जितनी देर बीन बजाने वाले में दमखम रहा।

एक बाराती जिसे नशा कुछ अधिक चढ़ गया था, हाथ नचाकर जोर से कह रहा था, "पक्की बात है, सोलह आने ठीक, जो खुद बदशक्ल होता है उसे बीवी हसीन मिलती है", दूल्हे की ओर इशारा करके उसने कहा, "पट्ठे की होने वाली पत्नी हुस्नपरी है। मैंने उसे अपनी आंखों से देखा है। आखिर, मेरी ससुराल भी अखनूर में है।"

मैंने सोचा दूल्हे को इस बात पर ज़रूर गुस्सा आएगा और शायद कुछ झगड़ा भी हो। मगर हुआ कुछ भी नहीं, सिर्फ बीन बजाने वाले की ओर एक रुपये का नोट फेंक कर दूल्हा खुद भी उसी तरह नाचने लग पड़ा, जैसे बीड़ियों की मशहूरी करने वाले लौण्डे नाचते हैं।

एक हल्की-सी सरसराहट हुई। मैंने देखा, वे दोनों बूढ़े अनिश्चित-सी मुद्रा में मेरे पीछे खड़े थे। एक ने आगे बढ़ कर मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया, "क्या काम करते हो ?"

'बेकार हूं।"

"कुछ काम करोगे ?"

मैंने अपने सिर को एक हल्का-सा झटका दिया, "हां।"

"अखनूर तक हमारे साथ जाना होगा। बढ़िया खाना-पीना और पहनना......।"

मैंने धीरे से उसका हाथ कंधे से हटा दिया, "मुझे करना क्या होगा ?"

"चुपचाप आराम से बैठना।" बूढ़े ने शब्द 'चुपचाप' पर अधिक जोर दिया ।

"मैंने अपनी उम्र के तेईस वर्ष चुपचाप ही बिताए हैं।"

"हमें सिर्फ तीन दिन चाहिए। इसके लिए तीस रुपए हम अलग से देंगे। मगर तुम्हें अन्त तक चुप ही रहना होगा।"

थोड़ी देर में दूल्हे के चमक-दमक वाले कपड़े मेरे तन पर थे। वही खट्टी गन्ध वाली शराब का एक गिलास मेरे सामने लाकर किसी ने रख दिया। मैंने कहा, "नहीं, मैं नहीं पीता हूं।"

"नहीं, पियो।" फौजी ढंग से कटे हुए बालों वाले युवक ने मेरा हाथ दबाते हुए कहा, "दूल्हा बन कर न नहीं करते।"

मैंने कहा, "किराए के दूल्हे पर आपका यह नियम लागू नहीं होता।"

गिलास असली दूल्हे ने दोनों हाथों से थाम लिया। उसकी अधमुंदी आंखें एक बार पूरी खुल गईं। एक आंख कांच की ही थी।

·

तीसरे दिन हम बस में लौट रहे थे। बारातियों की बातें और हंसी का मिला जुला स्वर बह रहा था। आगे की एक सीट पर मैं और दुलहन सिकुड़े हुए बैठे थे। हमारे पीछे वाली सीट पर असली दूल्हा था। मुझे लग रहा था मैं बस में नहीं एक तेज घूमते लट्टू पर खड़ा हूं। एक बोझ मेरी देह पर बढ़ता ही जा रहा था। खड़ी चढ़ाई में इंजन की गूंज किसी घायल बाघ की तरह निकल रही थी।

हम दोनों सिकुड़े-सिमटे बैठे थे। हमारे बीच की खाली जगह पर असली दूल्हे की नज़रें बिछी हुई थीं। झटके से जब कभी हमारे शरीर एक दूसरे को छू जाते, तभी पिछली सीट से ज़ोर की खंखार सुनाई देती। मैं सम्भल कर बैठ जाता। नींद की झपकी में एक बार जब दुलहन का सिर मेरे कंधे पर झुक आया तो पिछली सीट से लगातार खंखार आरम्भ हो गई, जैसे कोई चीज़ गले में जा अटकी हो। मैंने धीरे से अपना कंधा हटा लिया। दुलहन का सिर कंधे से फिसलता हुआ मेरी बगल तक सरक गया। रात के जागरण के कारण वह बेसुध

सोई हुई थीं। मैं थोड़ा सा हिला और कुछ पीछे की ओर घिसट आया। क्या यह मेरी देह है, जो इस तरह कांप रही है? कांपती देह और डूबता दिल। क्या यह मैं ही हूं? मैं थोड़ा मुड़ कर देखता हूं। बोखलाहट में झपकती एक आंख। चमकते सोने के दांत का एक सिरा।...और मुझे सहसा विश्वास नहीं होता कि असली दूल्हा यही है? मेरी बगल में गठरी सी बनी अबोध लड़की इसकी पत्नी है? खट्टी शराब की गन्ध में डूबे हुए शब्द—"पट्ठे की होने वाली बीवी हुस्न-परी है।" मुझे याद हो आते हैं। एक नई तरह का दर्द मेरे इर्द-गिर्द लिपटता ही चला गया।

एक मोड़ पर अचानक फौजी ट्रक आ जाने से ड्राइवर ने एकदम झटके के साथ ब्रेक लगा दी। सभी अपनी सीट पर झूल गए। दुलहन भी जग गई और जल्दी में घूंघट खींचने लगी। इसी अफरा-तफरी में उसकी आरसी अंगूठे से निकल कर नीचे जा गिरी। मैंने आरसी उठा ली। झिझकते हुए उसने अपना हाथ बाहर निकाला और आरसी ले ली। तभी सुनाई दी वही खंखार। अब वह मेरे लिए अर्थहीन हो गई थी—बस के हॉर्न की तरह।

सूर्य डूबने पर दुलहन ने गृह-प्रवेश किया। मेरे बदन से सुनहरी अचकन और अन्य कपड़े उतर चुके थे। उसी बूढ़े ने मेरी ओर बड़ी कृतज्ञता भरी दृष्टि से देखते हुए, दस रुपये के तीन नोट बढ़ा दिए। मैंने अपनी आंखें मोड़ लीं। बूढ़ा ताश के पत्तों की तरह नोट हाथ में लिए कुछ क्षण खड़ा रहा, फिर उसने अपना हाथ मेरे कंधे पर रख दिया, "यह रख लो।"

"नहीं,मुझे मजदूरी मिल चुकी है।"

बूढ़े ने नोट अपनी जेब में ठोंसते हुए कहा, "रात यहीं ठहरो। सुबह चले जाना।" बूढ़े ने आगे-पीछे देखते हुए कहा, "इस बात का किसी से ज़िक्र मत करना।" इतना कह कर वह चला गया।

एक बार फिर वही खट्टी शराब की गंध आंगन में फैल गई। ऐसा लगता था, जैसे वे शराब पी नहीं रहे, उसका छिड़काव कर रहे हैं। मैं एक अनावश्यक पात्र की भान्ति कोने में बैठा था।

नशे में असली दूल्हा लड़खड़ाता हुआ, एक स्त्री से कह रहा था, "भाभी, तेरे पैर धो-धोकर पीऊँगा। जन्म भर तेरे नाम की माला जपूंगा। देख, मुझ गरीब पर दया कर। तूने अभी उसे देखा कि नहीं? वह तारा कह रहा था कि मेरी होने वाली बीवी... होने वाली क्या अब तो हो भी गई......हुस्नपरी

है। मैंने हुस्न देखा है मगर हुस्नपरी नहीं। भाभी, आज दिखला दो न कैसी होती है हुस्नपरी। तेरी सौगन्ध तेरे पैर धो-धो कर पीऊंगा।"

मुंह में चादर का पल्लू ठोंस कर अपनी फूटती हंसी को रोकने का प्रयत्न करती हुई वह बोली, "नहीं, मेरी चांद सी देवरानी को नज़र लग जायेगी।"

"भाभी, मेरी एक आंख कांच की है, दूसरी मैं खुद फोड़ दूंगा। सदा के लिए सूरदास हो जाऊंगा। भाभी, मैं गले में घड़ा बांधकर डूब मरूंगा।"

"अच्छा सोचेंगे।" धीरे से कह कर और जोर से हंसकर वह इठलाती हुई चली गई। दोनों हाथों में गिलास थामे वह खड़ा, उसे जाते हुए देखता रहा।

मैं वैसे ही एक कोने में बैठा रहा। कुछ भी सोच सकने की सामर्थ्य मुझ में नहीं थी। मैं जैसे मैं न था।

सारा घर सो गया, सिवाए एक कमरे के। वह कमरा जाग रहा था। वह कमरा रो रहा था।

"नहीं, नहीं, तुम कौन हो?"

अट्टहास से कमरा कांप उठा, "मैं कौन हूं, इतना भी नहीं जानती?"

"नहीं, तुम चले जाओ, भगवान् के लिए।"

"यह तुम क्या नखरे करने लगीं। तुम क्या जानो भाभी की कितनी खुशामदें की हैं...।"

"नहीं नहीं, यह धोखा है, कपट है, तुम वह नहीं हो।" कहते-कहते वह सिसक उठी।

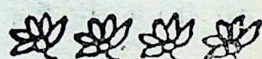
दूसरे दिन प्रातः सड़क के किनारे उसी पुलिया पर बैठा मैं सोच रहा हूं—मैं एक पत्ता पतझड़ का हूं। जिसे अकसमात् एक रेले ने विवाह-मण्डप में जा गिराया।

काश, यह घटना इतनी सी ही होती। इस से किसी दूसरे की जिन्दगी का नया मगर क्रूर अध्याय न लिखा जाता। मैं सोच रहा हूं। इस कहानी का खल नायक कौन है? और सहसा मेरा हाथ मेरी ही ओर उठ जाता है।

हास्य-व्यंग्य

उधार मुहब्बत की कैंची है

घनश्याम सेठी



बचपने में बड़े बूढ़ों से सुना और होश सम्भाला तो हरेक पनवाड़ी और पंसारी की दूकान में लिखा पाया कि उधार मुहब्बत की कैंची है। आपके परिवार के बड़े बूढ़ों के विषय में तो मैं कुछ नहीं कह सकता, किन्तु अपने बुजुर्गों के विषय में बड़े विश्वास के साथ कह सकता हूं कि यदि भवसागर से उनकी नैया पार न लग गई होती तो आज तक उधार मांगते दृष्टिगोचर होते। मैंने स्वयं आज तक पान और सिगरेट नकद दाम देकर नहीं खरीदे, परन्तु यदि कोई यह कहे कि मेरे बुजुर्गों के, अपने शहर के पनवाड़ी से बुरे सम्बन्ध रहे हैं, तो मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता। बड़े बोल नहीं बोलता, हमारे परिवार के मूल वैभव का प्रभाव था या बनिये और पनवाड़ी का "इनफीरियारेटी कम्पलेक्स" कि वे हमें उधार देना ही अपना सौभाग्य समझते रहे। हम ने भी कभी उनकी इस भावना को ठेस नहीं पहुंचाई और सदा उधार लेकर उन्हें मश्कूर करते रहे।

अपने इस छोटे से अनुभवपूर्ण-जीवन में मैं आवश्यकतानुसार उधार भी लेता रहा और अपनी बिसात के मुताबिक मुहब्बत के मामले में भी कंजूस नहीं रहा। किन्तु इसे संयोग ही कह लीजिए कि न मैं ने मुहब्बत करने के पश्चात् उधार मांगा है, न उधार ले लेने के पश्चात् मुहब्बत की है। वास्तविक कारण शायद यह हो कि जिस व्यक्ति से मैंने उधार लिया, वह प्रेम प्यार का कायल ही नहीं था और जिस से प्यार की पींगें बढ़ाई वह उधार दे सकने में असमर्थ था। कई ऐसे महानुभाव भी हैं जो उधार लेते-लेते मुहब्बत करने लगते हैं और मुहब्बत करते करते उधार ले लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मुहब्बत और उधार में कुत्ते-बिल्ली का बैर नहीं है।

मैं उन लोगों में से नहीं हूं जिनकी आय का साधन मात्र उधार ही है और जो उधार से ही अपना और अपने बीवी बच्चों का पेट भरते हैं। यह तो खैर पेशे की बात है और पेट की आग को ठण्डा करने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता। यदि उधार देना एक व्यवसाय हो सकता है, जिसकी आय से लोग लाखों बना लेते हैं तो उधार लेने को हम व्यवसाय क्यों न कहें ? मेरा कई ऐसे सज्जनों से परिचय है, जिन्होंने उधार ले ले कर कोठियां और मकान बना लिये और लखपति हो गए। मैं उन लोगों में से भी नहीं हूं जो मात्र मनोरंजन के लिए ही उधार लेते हैं, यद्यपि उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं होती और उधार फिर भी लेते हैं। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं विवशता में घिर कर ही हाथ फैलाता हूं, यानी उस समय जब जेब खाली हो और कोई अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ी हो। मतलब यह कि मैं "उधार-उधार के लिए" की बजाए "उधार आवश्यकता के लिए" के सिद्धान्त में विश्वास करता हूं। यह अलग बात है कि मेरी आर्थिक दशा सदा पतली रही है और मेरी आवश्यकताएं प्राय: अनिवार्य ! स्पष्ट है, आर्थिक दशा पर राहू-केतू की दृष्टि हो और आवश्यकताएं अनिवार्य हों तो यह किसी के बस का रोग नहीं। यह मजबूरी हो तो मनुष्य क्या नहीं करता ? जान पर भी खेल जाता है। उधार तो फिर मुहब्बत की कैंची है, आनी-जानी वस्तु है। आज है, तो कल नहीं।

यद्यपि यह कोई विशेष गर्व की बात नहीं, जिसका खुले-आम ढिंढोरा किया जाय, किन्तु यथार्थता यही है कि मेरे जीवन का अधिकांश किसी न किसी मजबूरी की हालत में ही गुज़रा है। अतएव हालात ने मुझे उधार के मामले में अनुभवी बना दिया है। उदाहरणार्थ, मैं किसी ऐसे व्यक्ति से उधार नहीं मांगता जिसके मेरे साथ बड़े अच्छे सम्बन्ध हों या बिल्कुल मामूली जान पहचान हो। दोनों ही से तकाज़े का भय रहता है। बहुत अच्छे सम्बन्ध होंगे, बेतकल्लुफी होगी तो मांगने वाला हंसी-हंसी में उधार जतलाता रहेगा। मामूली सम्बन्ध होंगे तो वह इसे लेन-देन की बात समझेगा और निश्चित दिन से पहले ही स्मरण कराने आ पहुंचेगा। तकाजे से बचने के लिए आवश्यक है कि ऋण उसी से लिया जाय, जो तकाज़ा करने में झिझकता रहे और इसी उलझन में रहे कि क्यों खुद शर्मिन्दा होऊं, और दूसरे को भी परेशान। करूं सच पूछिए तो शराफत का तकाज़ा यही है कि उधार का तकाज़ा ही न किया जाए। यह स्वीकृत तथ्य है कि उधार एक बोझ होता है। और किस का जी नहीं चाहता कि अपना बोझ हल्का करे। किसी को इस बोझ का ताना देना उसका अपमान करना है। मैं उस भलेमानस का बड़ा मान करता हूं जो उधार दे और भूल जाय, बिल्कुल इसी प्रकार, जिस

प्रकार कई भलेमानस देवतास्वरूप लोग नेकी करते हैं और कुएं में डाल देते हैं, —(कह नहीं सकता कि ऐसे देवतास्वरूप कितने हैं, जिन्होंने इस शुभ कार्य के लिए धर्मार्थ कुएं खुदवा रखे हैं। आपको किसी का पता हो तो मुझे लिख भेजें।)

दुनिया में नव्वे प्रतिशत लोग भूल जाने की कमज़ोरी के शिकार हैं, परन्तु कितनी अजीब बात है, कि उधार देने वाले को अपनी रकम की पूरी तफ़सील और सारा ब्योरा याद रहता हैं। कभी-कभी सोचता हूं कि जिस प्रकार मैं उधार लेकर भूल जाता हूं, यह क्यों नहीं होता कि देने वाला भी देकर भूल जाय। वह भी तो मेरी तरह का ही हाड़ मांस का पुतला है, मशीन नहीं।

यह तो खैर मेरे विरुद्ध विषैला प्रचार किया गया है कि मैं कर्ज़ लेकर लौटाता नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैं वचनानुसार ऋण चुका देने का कायल हूं। मैं समझता हूं कि निश्चित समय पर ऋण न चुकाने से बेहतर तो यह है कि ऋण चुकाया ही न जाय। टालने और बहाने-बाज़ी से मुझे घृणा है। मुझे याद है कि मैंने एक मित्र से एक बार ऋण लिया था। निर्धारित समय पर लौटा न सका, परन्तु उसी समय मैंने उनसे जाकर कह दिया कि मैं आपका ऋण न चुका सकूंगा, शर्मिन्दा हूं, क्षमाप्रार्थी हूं! मेरे प्रिय मित्र को बड़ा सदमा हुआ। मेरा विचार है कि यदि मैं टालता रहता और बहाने गढ़ता रहता तो एक न एक दिन वह भी इस परिणाम पर ही पहुंचते कि कर्ज़ा वापिस मिलने की कोई आशा नहीं और निःसन्देह उस सूरत में उन्हें अपेक्षाकृत बहुत बड़ा सदमा होता। एक अन्य मित्र की महानता के गुण सदा गाता हूं। उनका तरीका यह था कि वह मुझे ऋण देते थे और अपनी डायरी में रकम दर्ज करते, तारीख डालते और साथ ही प्रकोष्ट (ब्रैकट) में यह शब्द भी लिख लेते "समझो पी गया"। मैंने ऊपर कहा न कि मैं वचनानुसार कर्ज़ लौटा देने के सिद्धान्तों में विश्वास रखता हूं. क्योंकि जीवन के अन्य पक्षों में भी अनेकानेक अभावों और विवशताओं के कारण मैं अपने सिद्धान्तों पर चल नहीं सका, इसलिए यह सिद्धान्त भी धरे का धरा ही रह गया। बात यह है कि मुझ में एक ऐसी कमी है जो मुझे किसी भी सिद्धान्त पर अटल नहीं रहने देती। मुझे ज्ञात है कि मेरे लेनदार मित्रों के समान आप भी मेरी बात का विश्वास नहीं करेंगे, परन्तु मैं तो सदा सत्य बोलूंगा कि मैं ऋण लेकर भूल जाता हूं। दोष यद्यपि मेरी स्मरण शक्ति का ही है, परन्तु स्मरण शक्ति भी तो मेरी ही है। मैं इस दायित्व से कैसे बच सकता हूं। अजब मानसिक रोग है, कि मुझे याद ही नहीं रहता कि मैंने किस समय किस से और कितना उधार लिया था। इस सम्बन्ध में मैंने अपने

एक 'साईक्राटिस्ट' मित्र से परामर्श किया, परन्तु काम की कोई बात वह भी नहीं बता सका ।

यह तो आपने भी सुना होगा कि बद से बदनाम बुरा । और कौन चाहेगा कि दो टकों के लिये बदनामी मोल ले, और अपने विषय में यह सुने कि "वह उधार लेकर लौटाता नहीं" । आप मेरे इस कथन से तो अवश्य सहमत होंगे कि जिस बेचारे की स्मरण-शक्ति ही जवाब दे जाय, वह औरों से क्या शिकवा करे । मुझे भी एक तो इस याद की कमजोरी ने मारा है, दूसरे मेरे साथ संयोग भी उलटे ही पेश आते हैं । उदाहरणार्थ, जब किसी ने याद दिलाया कि आज मेरा ऋण चुका देने का दिन है, मैं झूठ नहीं बोलता, बिल्कुल उसी दिन और उसी समय मेरी जेब जवाब दे जाती है । एक और 'ट्रेजिडी' है । जब जेब इस योग्य होती है कि वचनानुसार उधार चुका दूं तो स्मरण-शक्ति दगा दे जाती है और याद और जेब, दोनों ही वस्तुओं पर मेरा नियन्त्रण नहीं । परिणाम यह है कि दोष इन दो का है, और बदनामी मेरी होती है ।

मुझे उधार देने वाले साक्षी हैं (और भगवान् की दया से उनकी संख्या थोड़ी नहीं है) कि मैंने किसी को मजबूर करके कभी ऋण नहीं लिया । कई बार तो उलटा ऐसा हुआ है कि ऋण देने वालों ने ऋण देने के साथ-साथ सहानुभूति दिखलाना भी आवश्यक समझा । जब मैंने उनसे कहा कि भाई, अमुक दिन उनकी रकम लौटा दूंगा तो उन्होंने भलेमानसों की तरह उत्तर दिया, "इसकी आवश्यकता नहीं, जब हो तब दे दीजिएगा".. ... मेरा ढाढ़स बंधता है । मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं, तो वह कहते हैं कि "साहब क्यों शर्मिन्दा करते हो ।"

संयोगवश यदि पुनः उनसे भेंट हो जाती है तो मैं सिर झुकाकर उनके ऋण का उल्लेख कर देता हूं कि अमुक तारीख तक अवश्य लौटा दूंगा । वह फिर टोक कर कहते कि—शर्मिन्दा न कीजिए । मन ही मन में कहता हूं, "अरे भलेमानस, तेरे मुंह में घी शक्कर ।" ईश्वर करे मुझे भी कोई देवता स्वरूप व्यक्ति ऐसा कूआं खुदवा दे, जिसमें केवल तुम्हारी वही नेकियां डाली जायें जो तुम मुझ पर कर चुके हो, कर रहे हो और करोगे । जब सड़क चलते की मुलाकातें बढ़ जाती हैं तो मैं अनुभव करने लगता हूं कि मैं उन्हें व्यर्थ लज्जित करता हूं और सोचने लगता हूं कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी शक्ल देखकर ही उन्हें शर्मिन्दगी अनुभव हो जाया करे और वह इसलिए भविष्य में मुझसे कटने लगें और सलाम दुआ भी जाती रहे । और केवल इसलिए कि मेल-मिलाप और मित्रता में मैल न आ जाए, मैं वह रास्ता ही छोड़ देता हूं जिधर उनसे भेंट हो जाने का भय, मेरा मतलब है सम्भावना हो । ताकि न वह मुझे देख पायें और

न उन्हें शर्मिन्दगी हो। देख ली आपने मेरी शराफत। किन्तु मेरे कई अजीज़ जिनमें मेरे कई लेनदार मित्र भी हैं, मुझ पर यह अभियोग लगाते हैं कि मैं तकाज़े से बचने के लिए ही ऐसा करता हूं। यह सरासर झूठा दोषारोपण है. आप ही दिल लगती कहिए कि चांदी के कुछ सिक्के अधिक मूल्यवान हैं या बरसों के सम्बन्ध। मैं कुछ टकों के लिए एक मित्र को ठुकरा दूंगा, यह असम्भव है। मैं तो केवल मित्रों और शुभचिन्तकों को शर्मिन्दगी से बचाने के लिए ऐसा करता हूं—वह राह चलना छोड़ देता हूं तो भेंट ही नहीं होती। भेंट नहीं होती तो ऋण की बात भूल जाती है। कभी-कभार मुलाकात होती रहे, सूरत नज़र आती रहे तो ऋण भी याद रहता है, मिलूं तो मित्र को उलझन ही होती है और व्यर्थ ही शर्मिन्दगी का बोझ उठाना पड़ता है और न मिलूं तो ऋण की बात भूल जाता हूँ, इधर अकस्मात् ही सामने आ जाने वाली आवश्यकतायें भी मुझे चैन नहीं लेने देतीं। ईश्वर का यह क़हर बन्द हो तो मैं भी इस चक्कर से निकलूं—पर मेरे अज़ीज़ मेरी नीयत पर शक करने लगते हैं। आप ही न्याय कीजिए कि मैं जो ऋण लेकर लौटाता नहीं, मैं जो वह राह तक छोड़ देता हूं, जिस पर मित्र से भेंट होने की सम्भावना होती है, इसमें मेरी बदनीयती और बेईमानी का कितना दख़ल है और मेरी नेकनीयती और ईमानदारी का कितना?

काव्य-धारा

सुभाष भारद्वाज

शशि शेखर

मोहन निराश

पृथ्वीनाथ 'मधुप'

चन्द्रकान्त जोशी

शंकरदास 'पिपासु'

सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्'

दुर्गादत्त शास्त्री



रत्नलाल 'शांत'

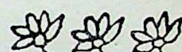
शकुन्तला सेठ

ओंकारसिंह 'आवारा'

श्रीवत्स 'विकल'

विनय

सुभाष भारद्वाज



भाषा, जो हम बोलते हैं,
सुनते हैं, लिखते हैं, पढ़ते हैं
इस में अब सिर्फ,
थोड़ी सी संज्ञाएं
और कुछ विशेषण
या थोड़े सर्वनाम बचे हैं
लेकिन क्रिया अब इस में
एक भी नहीं है
संज्ञाओं, विशेषणों
और सर्वनामों भरी भाषा यह
बिना किसी क्रिया के
केवल एक
गूंगी सी लिपि रह गई है
जिसने हमें
हम भाषा-भाषियों को
मूक और पंगु कर दिया है
इसलिये
ओ वैयाकरण महान्
भगवान पाणिनि
तू एक बार फिर यहां आ
ले के नया ज्ञान नया रूप यहां आ

(क्योंकि भगवान बार बार जनम सकता है)
तू फिर एक बार आ
और हमें
थोड़ी सी क्रियाएं दे जा
ताकि
विशेषणों से सजी
सर्वनामों से पुष्ट
हमारी इस भाषा की
ये मूक और पंगु संज्ञाएं
उछल कूद कर सकें
नाच सकें, गा सकें
हंस सकें, रो सकें
और इनके साथ-साथ
हमारा भी
हम भाषा-भाषियों का
टूटे मौन
टूटे पंगुत्व
टूटे गतिरोध
और हम
अपनी इस यात्रा की
अगली चढ़ाई
सहज ही में चढ़ सकें
और आगे बढ़ सकें

विशाल पंखुड़ियों वाला फूल

शशि शेखर



बिफरे जानवरों-सी
बेतहाशा भाग रही बसों
और कोलतार की सड़कों पर हाँफ रहे
समय के बीच
एक फूल अपनी पंखुड़ियाँ खोलता है
धीरे-धीरे ।
एक विशाल लाल फूल
जिसका गंधमय आलोक
खौफ़नाक नुकीले सींगों पर गिर
लहू-लुहान होता जा रहा है !
अंधेरा
शोर से लथपथ भीड़ को
हाँके ले जा रहा है
पुल के पार ।
शहर नियॉन रोशनियों के संकेतों पर
मद्यप-सा हंस रहा है ।
और उदास आंख-सा डब-डबा रहा है
यह विशाल पंखुड़ियों वाला
लाल फूल !

गंध लुब्ध हूं,
और सबकी आंखें बचाकर
प्रार्थना-रत हूं
कि इस महकते हुए आलोक को
अपने घर-आंगन पहुंचाकर
अपने कमरे को सौंप सकूं,
इससे पूर्व कि कोई बस आकर
उसे कुचल दे,
शोर से लथपथ भीड़
उसे पैरों तले रौंद डाले !

हम बौने

मोहन निराश



अक्षर टूटते हैं जुड़ते शब्द ।
और आकाश-पृथ्वी के बीच
अन्तर बढ़ जाता है ।
हम बौने
बांहें ऊपर उठा
हाथ पसार-पसार
छूने की कांक्षा करते हैं
जर्राफ़ की शिखा
या खजूर की फुंगी
अथवा समुद्र-वेला की पड़ौसिन पहाड़ी चोटी ।

मैं, नव-वर्ष और बधाई

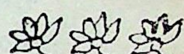
पृथ्वीनाथ मधुप



काँच की—
मेरे अस्तित्व के ऊपर
एक और तह चढ़ी
घुटन बढ़ी
धड़कन भी
टिकटिकाती रही—
सिरहाने की घड़ी।
दीवार पर लटका
कैलेण्डर नया
हसने लगा व्यंग्य-भरी हंसी।
तुम्हारा—
वह दिपता चेहरा
शीत से सिकुड़े पियराये
साग के पत्ते-सा लगा
[तीन-तीन बच्चियों की माँ!]
"समय बीत रहा
आयु-सोपान की पोड़ियां
चढ़ रही हैं—
बेटियां
और यहाँ
पेट से ही फुर्सत कहां?"
तुम्हारी यह आवाज
मन में कौंधी
कचोटने लगी।
और
याद आई
जननी की
यह बात भी :
हर आने वाला वर्ष
जाने वाले साल को
हमारी आयु का—
एक संवत्सर दे जाता है।
और..................
आज
दीवारों की उठी सफेदी,
खूंटियों पर लटके—
लत्ते,
एक बाजूहीन, लंगडी कुर्सी,
सूनी आँखें फाड़े—
तुम्हारा चूल्हा,
घिसे, खाली बर्तन,
अनचुकाई—
बिलें
और...........।
एक के बाद एक,
कभी समवेत में
कुछ कहती हैं
चिल्लाती हैं।
इस कचपच से
कानों के पर्दे
फटे जा रहे।
(घड़ी टिकटिकाये और कैलेण्डर हंसते
जा रहे हैं)
दब रहा हूं मैं
काँच के भार के नीचे।
× × × ×
एक सुन्दर—
बहुरंग बेल-बूटों वाले
लिफाफे में
दोस्त का—
तार आया—
"नया साल मुबारिक"

अनजान—पहचान

चन्द्रकान्त जोशी



प्रिय ! जब तक मैं अनजान रहा,
तुझ से करता पहचान रहा ।

आँख खुली जब पहले पहले,
साकार तुझे मैंने देखा ।
अपनी आशा-अभिलाषा का,
आधार तुझे मैंने देखा ।

पर सपना कब तक टिकता है,
हर मोती जग में बिकता है ।
चाल ज़माने की तूफानी—
जीवन कोमल एक लता है ।

यों मंज़िल के पास पहुंच कर,
इक बालक सा हैरान रहा ।
प्रिय! जब तक मैं अनजान रहा,
करता तुझ से पहचान रहा ।।

परिणाम न जाना आने का,
परिणाम न जाना जाने का;
रख दिये चरण ज्यों उठते थे—
क्या कारण रोने-गाने का ?

एक विवशता का मैं बन्दी,
किस बन्धन में घूम रहा हूं ?
सुधा समझ कर विष पी डाला,
क्या मस्ती है ? झूम रहा हूँ ।

इस मदहोशी के आलम में,
कब काल-स्थान का ध्यान रहा ?
प्रिय ! जब तक मैं अनजान रहा,
तुझ से करता पहचान रहा ॥

हर ठोकर को पूजा माना,
उपवन सा माना वीराना ;
मंगल गीत सुनाए मैंने—
छेड़ा जब भी घाव पुराना ।

तिल-तिल यह तन छेदा मैंने,
कान्टों से उर भेदा मैंने,
आंसू रोये पर मुस्काया—
घाव न मन का हरियाया ।

चुन-चुन फूल सँजोये मैंने,
भरी भीड़ पर सुनसान रहा ।
प्रिय ! जब तक मैं अनजान रहा
करता तुझ से पहचान रहा ।

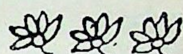
आज यत्न सब हारे हारे,
आधार नहीं, विश्वास नहीं ।
भटक रहा हूँ द्वारे-द्वारे—
फूलों में जैसे बास नहीं ।

वही धूल में पड़े हुए हैं,
लाल जिन्हें मैं समझ रहा था,
उन का देखा रुख उल्टा है
अपना मैंने जिन्हें कहा था !

वह तस्वीरें मुझ पर हँसती,
जिन पर मुझ को अभिमान रहा ।
प्रिय ! जब तक मैं अनजान रहा ।
करता तुझ से पहचान रहा ॥

अब तो तुम्हें बता दूं

शंकरदास 'पिपासु'



अब तो तुम्हें बता दूं
अनिलानल, जल, धरा, व्योम के
सिवा तुम्हें मैं क्या दूं ?

दिया मुझे क्या था तब तुम ने
लेना जो मुझ से अब तुम ने
यही यही न !
पंचभूत की काया !
उस पर ठगिनी मोहिनी माया
जिसने पग पग पर भटकाया
मन माना नित नाच नचाया

यही यही न लो ?
और तुम्हें मैं क्या दूं ?
अब तो तुम्हें बता दूं
अनिलानल, जल, धरा, व्योम के
सिवा तुम्हें मैं क्या दूं ?

हां, यह सीमा

सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम्'



यह सीमा
हां, यह सीमा
जो कभी किसी को
एक-इकाई न रहने देती,
बांटती है—
प्राणों से प्राणों को—
भिन्न करती है।
दानवता का
अंक भरती है।
उकसाती है
इसको
उसको।
आपस में लड़ाती है।
रक्त-पात होता है।
स्तन-पायी शिशु
लटकने लगते हैं
अकाल के क्रूर पलनों में।

●

यह सीमा
हां, यह सीमा
उकसाती जो कवियों को
गाने के लिये
रण-चण्डी के गीत,
प्रलय लाने के लिए।
सेनानी को सेनानी से
भिड़ने के लिए
विवश करती है।
उथल-पुथल मचा देती है।
त्राहि-त्राहि कर उठते हैं
दोनों छोर—
इस पार भी
उस पार भी।

●

यह सीमा
हां, यह सीमा
जो कभी किसी का
त्राण न बनी है,
साक्षी है इतिहास!
क्या नहीं हुआ
इस सीमा के लिये?
संस्कृति से
नित नयी संस्कृतियों ने,
सभ्यता के नाम पर
नित नयी सभ्यता ने
जन्म लिया
भाषा से भाषायें बनीं
अर्थात्—
कभी एक सीमा थी
आज वे अनेक हैं।

●

यह सीमा
हाँ, यह सीमा
जो स्वयम् त्राण चाहती है
पर-त्राण क्या बनेगी?

●

काश!
कभी हो ऐसा
(कि) धंस जाए यह सीमा
भीतर ही भीतर,
किसी अज्ञात लोक में,
बिल्कुल ऐसे,
जैसे गिरा पत्थर
अथाह जल-समूह में
और
ऊपर की
सभी सीमाएं
आपस में मिल जायें!!

दीप से

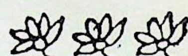
दुर्गादत्त शास्त्री



जब अमावस अट्टहास कर हंसी
और तमचर उछल पड़े मनमानी को
जब उस बीहड़ में मेरे कदम
गिरते अधिक बढ़ते कम, मैं हारने चला
तभी दूर बहुत दूर तुम जगमगे
कुछ धीमे धीमे सहमे सहमे
भयंकर आंधी का बगूला जो उठा था
मेरी तरह तुम भी लड़खड़ाये
पर तुम्हारा कंपन मेरे लिय बना वरदान
भर गया मेरे अंतस् में स्वर्ण-विहान
लाखों प्रतिरोधों में अन्धड़-झकोरों में
बढ़ूंगा आगे ही आगे अपने पथ पर बढ़ूंगा
एक मात्र ध्येय निष्ठ जलूंगा तपूंगा
और यदि बुझा भी तो पूर्व इसके
हृदय दीप जलाऊंगा शत शत कि वे
अंधकार के कुंचक्रों से आक्रमणों से
और उनमें पलने वाले निशाचरों से जूझें कि
यह सुन्दर सुरभित धरती का पावन उपवन
अपवित्र न हो जाये विकृत न हो जाये

गीत

रतनलाल 'शान्त'



उठती नज़रों को बांध रहा
झुकती सी छत का घेरा है
क्यों हो विश्वास, करूं कैसे कल्पना खुले आकाश की ?

रंगों का एक जलूस बढ़ा
छूटा पीछे मेरा प्रसंग
ठण्डे हाथों से बुझा रहा
कोई मेरे भी उजले रंग
है और मेरी निर्भय नियति है और मलय वातास की
खोली न जाय मुझ से पिछली खिड़की अपने इतिहास की ।

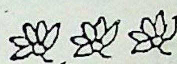
मेरे सुन्दर ऊंचे पर्वत
चीखा करते बस इश्तिहार
कालिख के अक्षर पाट रहे
हर मौन मगर रौशन दरार
भूलेगी ही अब तो आदत कुछ धूप की कुछ सांस की
अब ओले ही उग आयेंगे हो आड़ ज़रा मधुमास की ।

वह विगत मेरा आ खड़ा हुआ
है शीश झुकाए पशेमान
चिपकाए विज्ञापन मुंह पर
कुछ कहना चाहे वर्तमान
लेकिन मेरे दरवाजे पर हल्दी में आंक गई अक्षर-
आंधी में तोल रही है पर—रेखा एक प्रकाश की ।

●

गीत

शकुन्तला सेठ



क्या रुकेंगे पाँव तेरे, पा नये युग का निमन्त्रण ?
उठ क्षितिज से घोर घन है, घेरते रह रह गगन को,
तड़प तड़िता चमकती है, थर थरा देती धरा को।
नाश के स्वर में है गाता, क्षुब्ध पारावार गायन।
क्या रुकेंगे पांव... ..

मद भरी यह आंख किस की, भार ममता का लिये है,
डालती बन्धन सुकोमल, प्यार की मदिरा पिये यह,
पायलों कीझनन झन झन, किंकिणी ओ'क्वणित कंकण
क्या दबा पायेंगे ये सब, काल का गम्भीर गरजन
क्या रुकेंगे .....

ओ अमर! क्या मृत्यु से डर, बढ़ चलो पथ पर निरन्तर,
बोल झंझा भी कभी क्या, है हिला सकती हिमाचल
आज कण-कण में भरो तुम, जागरण का घोष भैरव
प्राण हों संचरित मृत में, हों सजग निद्रा मगन जन
क्या रुकेंगे पांव .....

कंटकों से कीर्ण मग हो, रोकती चट्टान पथ हो,
आग बरसाता गगन हो, अन्धतम छाया सघन हो,
टूटती सिर पर शिलाएं, बांधती पग आपदाएं
गिन न इनको तूल सम भी, बढ़ जा बनकर प्रभंजन !
क्या रुकेंगे पांव... .

अज्ञानतम से पूर्ण भूतल, ज्योति से कर दो प्रकाशित
स्वार्थमय तज तुच्छ बन्धन, भूत हित से हो प्रभासित
दैन्य दुख संतप्त धरिणी, प्रेम वारिद से हो सिंचित
नवल जीवन नव उमंगें, सृष्टि में भर दो प्रति क्षण
क्या रुकेंगे पांव ...

●

गीत

ओंकारसिंह 'आवारा'



देखो साथी किसी मोल पर पागल प्यार नहीं बेचूंगा,
घर बेचूंगा दर बेचूंगा,
जीवन के सब सुख बेचूंगा।
बेचूंगा रजनी के तारे,
सारी दुनिया के सुख बदले
अश्रु हार नहीं बेचूंगा
पागल प्यार नहीं बेचूंगा

दिल की धड़कन आंख की तड़पन
सीने के अनुपम उद्गार
हार जीत को भी बेचूंगा
बेचूंगा जीवन के साल
पहला प्यार नहीं बेचूंगा
पागल प्यार नहीं बेचूंगा

जीवन के इस दुर्गम पथ पर
श्रम से थक कर हार गया हूं
बेच रहा हूं अपने पन को
जीवन बाज़ी हार गया हूं
बिकने को सर्वस्व बिके पर
प्यार की हार नहीं बेचूंगा
पागल प्यार नहीं बेचूंगा

सावन का यौवन मतवारा
और उजली पूनो की रातें
बालाओं के गीत कंवारे
मधुर मनोहर सुन्दर घातें
बेचूंगा कोकिल का गुंजन
टूटे तार नहीं बेचूंगा
पागल प्यार नहीं बेचूंगा

गीत

श्रीवत्स 'विकल' उधमपुरी



ओ नभ के नीरद, मत उमड़ो नयनों में ।
जो बैरिन बिजुरी तड़पा करती घन में,
वह उतर रही है आज एकाकी पन में ।
बोझिल तन पर सन्ध्याओं का पहरा है,
मावस की स्याही बिखरी है जीवन में ।
ये निर्मम तारे, अंगारे बन-बन कर—
सुलगाते हैं मरघट, मोहक सपनों में ।
ओ नभ के नीरद मत उमड़ो नयनों में ।
काले सायों में घुट-घुट मरता यौवन—
कुहरे सम अस्थाई जग के बन्धन ।
अभिलाषाएं जम गईं बर्फ सी शीतल,
गीतों के प्राणों में मिश्रित हैं उत्पीड़न ।
परियों की एक कहानी है यह दुनिया,
हम भूले भटके झूम रहे हैं चयनों में ।
ओ नभ के नीरद मत उमड़ो नयनों में ।
उपवन को झूठा प्यार यहां कोकिल से,
पनिहारिन को खुद ही छल जाता है पनघट ।
शहनाई पर क्यों झूमें पामर-दुनिया,
जब दुल्हन को धोखा दे जाता है घूंघट ।
है एक बहाना रूप-जवानी भ्रम है,
खुशियों के पनघट लिपटे हैं कफनों में ।
ओ नभ के नीरद मत उमड़ो नयनों में ।

लेखक

- डॉ० वेद कुमारी
- केदारनाथ शास्त्री
- प्रो० काशीनाथ दर
- डॉ० मुहम्मद अयूब खां
- प्रो० चमनलाल सपरू
- शिबनकृष्ण रैणा
- श्यामलाल शर्मा
- जवाहरलाल हण्डू
- डॉ० कौशल्या वल्ली
- प्रो० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'
- प्रीति कुमार

प्राचीन संस्कृत साहित्य में डुग्गर-भूमि

डॉ० वेदकुमारी

डुग्गर या इस से मिलते-जुलते संस्कृत शब्द का उल्लेख अभी तक के अध्ययन के आधार पर प्राचीन भारतीय ग्रन्थों, वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराणों इत्यादि में उपलब्ध नहीं होता है। महाभारत के भीष्मपर्व के ९वें अध्याय के ५२ श्लोक में दुर्गाल प्रदेश का नाम मिलता है, पर वह सूची भौगोलिक क्रम से नहीं दी गई। अत: इसकी पहचान के लिए जब तक कोई सामग्री उपलब्ध न हो, तब तक इसका सम्बन्ध डुग्गर से ही है, इस विषय में कुछ भी कहना कठिन है। अत: इन प्राचीन ग्रन्थों से डुग्गर प्रदेश सम्बन्धी तथ्य प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम वर्तमान समय में डुग्गर या डोगरी भाषा के प्रदेश की रूप-रेखा को समझ लें तथा तदनुसार उस प्रदेश का वर्णन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में खोजने की ओर पग बढ़ाएं। इस प्रस्तुत लेख में डुग्गर प्रदेश से तात्पर्य किसी राजनैतिक प्रदेश से नहीं बल्कि केवल डोगरी भाषा तथा उसकी उपभाषाओं के क्षेत्र से है।

डॉक्टर ग्रियर्सन के मतानुसार तो डोगरी का प्रदेश वर्तमान जम्मू कश्मीर रियासत का दक्षिणी भाग है, जिस में जम्मू तथा उसके आस-पास का प्रदेश ही आता है। वह जम्मू के उत्तर की रामबनी, पोगली इत्यादि पहाड़ी बोलियों को डोगरी से सम्बन्धित मानते हुए भी डोगरी के अन्तर्गत नहीं समझते। जम्मू के पूर्वोत्तर में भद्रवाहवर्ग की भद्रवाही, भलेसी, जम्मू के पूर्व में चम्बा प्रदेश की चमेयाली, गादी इत्यादि को वह पहाड़ी बोलियों में गिनते हैं। केवल जम्मू की सीमा पर चम्बे के पश्चिम में बोली जाने वाली भटयाली तथा जम्मू की सीमा पर सियालकोट तथा गुरदासपुर जिलों के उत्तरी भागों में बोली जाने वाली कण्डयाली को वह डोगरी की उपभाषायें मानते हैं। इस

प्रकार ग्रियर्सन का अनुसरण करते हुए डोगरी भाषा का प्रदेश जम्मू प्रान्त का दक्षिणी भाग, पाकिस्तान में गये पंजाब के स्यालकोट ज़िले की उत्तरी सीमा, भारतान्तर्गत पूर्वी पंजाब के गुरदासपुर जिले की उत्तरी सीमा हिमाचलप्रदेशवर्ती चम्बे की पश्चिमी सीमा तथा कांगड़ा प्रदेश माना जा सकता है। अन्य कई विद्वानों के अनुसार डोगरी का प्रदेश इससे कहीं अधिक विस्तृत है। जॉन बीम्ज़ ने अपनी पुस्तक Outlines of Indian Philology में नेपाल से लेकर पुंछ तक बोली जाने वाली पहाड़ी बोलियों में डोगरी को पश्चिमी पहाड़ी वर्ग की प्रतिनिधि बोली माना है। इस पश्चिमी पहाड़ी के क्षेत्र में पीरपंजाल के दक्षिण में लगभग सारा जम्मू प्रान्त, कुल्लू, कांगड़ा, पंजाब के गुरदासपुर, होशियारपुर ज़िलों के पहाड़ी इलाके, हिमाचल प्रदेश की भूतपूर्व देशी रियासतें, मण्डी, सुकेत, बिलासपुर और शिमला, पाकिस्तान में विद्यमान पश्चिमी पंजाब का बहुत सा उत्तरी भाग आ जाता है। प्रस्तुत लेख में इस सारे प्रदेश को डोगरी प्रधान क्षेत्र मान कर प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में इस क्षेत्र सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री को एकत्रित किया गया है।

समय परिवर्तन के साथ साथ प्रदेशों की भौगोलिक संज्ञायें तथा परिभाषायें भी बदलती रहती हैं। कभी एक समय के साहित्य में जिस प्रदेश का कोई विशेष नाम प्रचलित होता है, दूसरे समय के साहित्य में उसी प्रदेश का बिल्कुल भिन्न नाम मिलने लगता है। कई बार किसी विशेष भौगोलिक नाम से अभिहित छोटा सा प्रदेश कुछ समय के अनन्तर सांस्कृतिक या राजनैतिक कारणों से बहुत विस्तृत हो जाता है तो कभी किसी विस्तृत प्रदेश की सीमायें सिकुड़ कर छोटी सी रह जाती हैं, जबकि नाम वही रहता है। भाषा के विकास के साथ-साथ भाषा-विज्ञान के नियमों द्वारा भी भौगोलिक संज्ञाओं का रूप बदल दिया जाता है। इन सब कारणों से किसी भी क्षेत्र के आधुनिक नामों की पहचान प्राचीन भौगोलिक संज्ञाओं के साथ करने में पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ता है। डुग्गर-भूमि का वर्णन प्राचीन साहित्य में से खोजने का कार्य भी इसी प्रकार की उलझनों से भरा है।

पुराणों के भुवनकोशों में तथा राजशेखर की काव्यमीमांसा में भारतवर्ष को मोटे तौर पर पांच भागों में विभक्त किया गया है :

मध्यप्रदेश, उदीच्य या उत्तरापथ, प्राच्य, दक्षिणापथ तथा अपरान्त।

उदीच्य या उत्तरापथ उत्तर भारत के लिए प्रयुक्त हुआ है। वसिष्ठ तथा बोधायन के धर्मसूत्रों में इसे सरस्वती के लोपस्थान से पश्चिम की ओर बताया है। इस उदीच्य के अन्तर्गत कई छोटे बड़े जनपदों का उल्लेख प्राचीन

संस्कृत ग्रंथों में मिलता है और उनमें से कई एक की पहचान डोगरी भाषा के प्रदेश से की जा सकती है। सियालकोट तथा उसके आसपास का प्रदेश विस्तृत मद्र जनपद का एक भाग था। पंजाब के कई नाम वाहीक, आरट्ट, पंचनद इत्यादि प्रसिद्ध थे। कांगड़ा तथा उसके आसपास के पहाड़ी प्रदेश का नाम त्रिगर्त मिलता है। कुल्लू घाटी तथा उसका समीपवर्ती प्रदेश कुलूत नाम से पुकारा गया है। व्यास नदी से लेकर पश्चिम में गान्धार तक का प्रदेश केकय कहा गया है। पुंछ राजौरी तथा उसके आसपास के प्रदेश का उल्लेख दार्व तथा अभिसार नाम से मिलता है।

वैदिक साहित्य में डुग्गर

भारतवर्ष का प्राचीनतम साहित्य वैदिक साहित्य है जिसके अन्तर्गत चारों संहितायें, ब्राह्मणग्रंथ तथा उपनिषद् आते हैं। ऋग्वेद के नदीसूक्त में सिन्धु, शुतुद्री, वितस्ता, विपाशा, असिक्नी, परुष्णी, मरुद्वृधा नदियों का उल्लेख है जो इसी डुग्गर प्रदेश में से या इसके निकट से होकर गुजरती हैं। सिन्धु की पहचान सिन्ध नदी से, शुतुद्री की सतलुज से, वितस्ता की जेहलम से, विपाशा की व्यास से, असिक्नी की चनाव से तथा परुष्णी की रावी से की गई है। मरुद्वृधा नदी की पहचान स्टाइन ने मरुवर्धन से की है जो किश्तवाड़ में से बहती हुई चनाब में मिल जाती है। ऋग्वेद में मुञ्जवान् पर्वत का उल्लेख है। जिमेर के मतानुसार हिमालय की यह चोटी कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में स्थित है।

शतपथ ब्राह्मण में उदीच्य के ब्राह्मणों का उल्लेख है, जिन्होंने कुरुपंचाल के ब्राह्मणों के साथ विवाद करके उन्हें हराया था। इस उदीच्य प्रदेश में रहने वाले उत्तरकुरु, उत्तरमद्र, गान्धार, वाह्लीक, केकय तथा कम्बोज वंशों का उल्लेख मिलता है। इस उदीच्य की सीमा तो कश्मीर की घाटी से परे के प्रदेश को भी अपने भीतर ले लेती है, पर इसका मध्य तथा दक्षिण का भाग डुग्गर माना जा सकता है।

ब्राह्मण ग्रंथों के समय में मद्र देश की सीमायें बहुत विस्तृत थीं। ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तर-मद्रों को हिमवत् से परे उत्तरकुरुओं का पड़ोसी बताया गया है। मद्रदेश के कई विद्वानों के नाम जैसे मद्रगार शौंगायानि काप्य पातंचल इत्यादि वैदिक साहित्य में मिलते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् ५, ११, ४ तथा शतपथ ब्राह्मण १०, ६, १, २ में केकय के राजा अश्वपति का वर्णन मिलता है, जिसकी विद्वता की धाक दूर दूर तक थी। दाशराज्ञ युद्ध में भाग लेने वाले यदु, अनु, द्रुह्यु, तुर्वश इसी डुग्गर प्रदेश के प्रतीत होते हैं। ऋग्वेद ७, १८ में तुर्वशों द्वारा

रावी पार करने का उल्लेख है पर यह विवादग्रस्त है कि ये पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़े थे या पश्चिम से पूर्व की ओर।

रामायण तथा महाभारत में डुग्गर

रामायण के अयोध्याकाण्ड के ६८वें तथा ७१वें सर्ग में भरत के ननिहाल केकय देश का उल्लेख है। भरत को लेने जाते हुए दूत वाह्लीक प्रदेश में से हो कर जाते हैं और रास्ते में व्यास तथा सतलुज नदी को पार करते हैं। यह स्पष्ट है कि यहां पाठ वाह्लीक न हो कर वाहीक होना चाहिए। महाभारत के कर्णपर्व में स्पष्ट लिखा है कि पांच नदियों और छठी सिन्धु नदी के बीच में स्थित प्रदेश वाहीक है।

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तरा स्थिता:।
तान्धर्मबाह्यानशुचीन्वाहीकानपि वर्जयेत् ॥

वाहीक शब्द का प्रयोग सारे पंजाब के लिए होता था अत: इसके पहाड़ी भाग के अन्तर्गत डोगरी भाषा का कुछ प्रदेश भी आ जाता है। इस डुग्गर प्रदेश का दक्षिण-पूर्वी भाग जो अब कांगड़ा कहा जाता है, महाभारत काल में त्रिगर्त्त नाम से प्रसिद्ध था। वनपर्व में उल्लिखित है कि जयद्रथ ने जब द्रौपदी हरण किया तो त्रिगर्त्त का राजा सुरथ भी उसके साथ था। युधिष्ठिर के चारों घोड़ों को उसने अपनी गदा से मार गिराया था। अन्त में अर्जुन ने त्रैगर्त्तों को भी जीत लिया। महाभारत के युद्ध में पांच त्रिगर्त्तराज भाइयों का उल्लेख है जो कौरवों की ओर से लड़े थे और जिन के साथ लड़ने के लिए द्रौपदी के पांच पुत्रों को नियुक्त किया गया था।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् जब पाण्डवों द्वारा अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया तो त्रैगर्त्तों ने ही उसे अपनी सीमा में रोकने का साहस किया था। आश्वमेधिक पर्व में केवल उन्हीं युद्धों का वर्णन है जिन में अर्जुन को बड़ी कठिनाई से विजय प्राप्त हुई थी और उन में सबसे प्रथम और सबसे विस्तृत विवरण त्रैगर्त्तों के साथ हुए युद्ध का ही है। उस समय त्रिगर्त्त देश का राजा सूर्यवर्मा था। युद्ध क्षेत्र में अर्जुन के बाणों से पूरा बिंध जाने पर भी वह अपना हस्तकौशल दिखाता रहा और बदले में १०० बाण अर्जुन पर चला दिये। उसके दिवंगत होने के पश्चात् उसका छोटा भाई केतुवर्मा लड़ा। केतुवर्मा के मारे जाने के पश्चात् एक छोटे से बालक धृतवर्मा ने युद्ध का नेतृत्व सम्भाला। युद्धक्षेत्र में उस बालक की वीरता और फुर्ती को देख कर तो अर्जुन भी मन ही मन चकित हो उठे थे। कांगड़ा के वीरों की यह गाथा

महाभारत के पृष्ठों में गूंजती हुई आज भी हमें डुग्गर भूमि की वीरता का परिचय देती है। आदिपर्व में यह कहा है कि पाण्डव एकचक्रानगरी को जाते हुए इस त्रिगर्त्त देश में से होकर निकले थे पर इस एकचक्रानगरी की पहचान अभी तक नहीं की जा सकी।

मद्र का उल्लेख महाभारत में कई बार आया है। आदिपर्व में चार मद्रों का उल्लेख मिलता है। उत्तरमद्र तो सम्भवत: हिमवत् से भी परे उत्तरकुरु की सीमा का स्पर्श करता था, दक्षिणमद्र रावी के पश्चिम का प्रदेश था, पूर्वमद्र सियालकोट के पूर्व की ओर का क्षेत्र रहा होगा, जिसकी पूर्वी सीमा त्रिगर्त्त को छूती रही होगी। कर्णपर्व के ४४वें, ४५वें अध्याय में कर्ण ने इस प्रदेश की तथा यहां के वासियों की खूब निन्दा की है। पाण्डु की पत्नी माद्री इसी प्रदेश की थी। महाभारत युद्ध में त्रैगर्त्तों के साथ मद्रक भी कौरवों की ओर से लड़े थे।

केकय देश के पांच राजकुमार पाण्डव-पक्ष में सम्मिलित थे, पर दो राजकुमार विन्द तथा अनुविन्द दुर्योधन की ओर से लड़े थे।

अर्जुन की दिग्विजय के प्रकरण में तथा भीष्मपर्व में उल्लिखित जाति सूची में दार्व, अभिसार तथा उलूत का वर्णन है। उलूत तो कुलूत का ही अपपाठ प्रतीत होता है। यह कुल्लू तथा उसके आस-पास के पहाड़ी प्रदेश को द्योतित लरता है। दार्वाभिसार की पहचान पुंछ, राजौरी तथा उसके आसपास के प्रदेश से की जाती है। द्रोणपर्व में दार्वाभिसारों की गिनती व्रात्यों में की गई है।

वनपर्व के तीर्थ-यात्रा पर्व में कश्मीर के तक्षक नाग सम्बन्धी तीर्थ से लौटते हुए जिस देविका का उल्लेख है, वह डुग्गर की देविका मानी जा सकती है पर अनुशासन-पर्व में उल्लिखित देविका कोई और देविका ही प्रतीत होती है।

पुराणों में डुग्गर

पुराण इस डुग्गर प्रदेश के विषय में पर्याप्त सामग्री प्रदान करते हैं। देविका नदी का वर्णन कई पुराणों यथा पद्मपुराण, मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण, वामन पुराण, कालिका पुराण, अग्नि पुराण, नीलमत पुराण, विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में मिलता है पर इन में से कई एक पुराणों की देविका डुग्गर की देविका नहीं है।

वायु पुराण में उदीच्य तथा पर्वतीय जातियों के वर्णन में केकय, दार्व तथा त्रिगर्त्त का उल्लेख है।

सब से अधिक विश्वासनीय सामग्री नीलमत तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण से उपलब्ध होती है। नीलमत पुराण में जलोद्भव राक्षस द्वारा पीड़ित प्रदेशों की सूचि में दार्वाभिसार तथा मद्र का उल्लेख है।

कश्यप ऋषि के द्वारा भारत के पूर्व पश्चिम तथा दक्षिण के तीर्थों की यात्रा की जा चुकने पर नील नाग उनसे उत्तर दिशा के तीर्थों की यात्रा के लिए प्रार्थना करते हैं। उस प्रसंग में उन्होंने मद्र देश के तथा हिमवत्प्रदेश के पुण्यतीर्थों का उल्लेख किया है। इनमें विपाशा या व्यास नदी तथा उसमें मिलने वाली एक धारा देवह्लदा का उल्लेख है। इसी व्यास के उपरले स्रोतों का पर्वतीय प्रदेश कुल्लू है। डुग्गर प्रदेश की अन्य नदियों इरावती (रावी) देविका, आपगा, चन्द्रभागा तथा तौषी का उल्लेख भी इसी प्रसङ्ग में हुआ है। रावी का उपरला प्रवाह चम्बा के दक्षिण पश्चिम कोने में सर्व प्रथम दिखाई देता है। रावी व्यास और सतलुज के उपरले प्रवाहों से घिरा हुआ प्रदेश ही प्राचीन त्रिगर्त्त है। चन्द्रभागा कश्मीर के दक्षिण पूर्व में हिमालय की गर्भश्रृंखला से निकली दो धाराओं-भागा और चन्द्रा से बनी है। उत्तर पश्चिम दिशा से किश्तवाड़ पहुंच कर यह दक्षिण की ओर बह निकली है, जंगलवाड़ स्थान पर यह पश्चिम की ओर मुड़ी है, अरनास में फिर दक्षिण की ओर रुख करके रियासी से होती हुई अखनूर पहुंची है और वहां से आगे सियालकोट ज़िले में जा बही है। तौषी शब्द का प्रयोग बूहलर ने तोही के लिए माना है जो पीरपंजाल के दक्षिण से निकलती हुई बहुत सी जलधाराओं के लिए प्रयुक्त होता है, जिन्होंने वितस्ता तथा चन्द्रभागा को पुष्ट किया है। नीलमत की तौषी तो जम्मू प्रान्त की तवी नदी प्रतीत होती है जो शुद्धमहादेव के उपरी भाग से निकल कर सियालकोट के निकट चनाव में जा मिली है। नीलमत में चन्द्रभागा को चन्द्रांशुशीतलजला और तौषीको तोषितभास्करा कहा है जो क्रमश: इन के ठण्डे तथा गर्म जल की ओर संकेत करता है।

तौषी के साथ ही आपगा नदी का उल्लेख है जिसकी पहचान सियालकोट के उत्तरपूर्व की पहाड़ियों से निकल कर बहती हुई अयुक नदी से की जा सकती है।

देविका की पहचान के विषय में पर्याप्त कठिनाई उपस्थित होती है। जम्मू प्रान्त में ही बहने वाली तीन जलधारायें देविका कही जाती हैं, जिनमें से एक शुद्धमहादेव के निकट, एक उधमपुर के निकट तथा एक पुरमण्डल के निकट है। पुराणों में वर्णित देविका के विशाल स्वरूप और माहात्म्य को ध्यान में रखते हुए तथा महा-भाष्यकार पतञ्जलि के द्वारा उल्लिखित देविका के

किनारों की प्रसिद्ध चावलों की खेती का विचार करते हुए देविका की पहचान देग नदी से करना उचित प्रतीत होता है । जसरोटा के निकट जम्मू की पहाड़ियों से निकल कर यह नदी पाकिस्तान के अन्तर्गत पश्चिमी पंजाब के सियालकोट गुजरांवाला तथा शेखुपुरा ज़िलों में से हो कर मिण्टगुमरी ज़िले की सीमा पर रावी में जा मिलती है ।

देविका तथा इरावती के साथ ही नीलमत में तीन नदों कुम्भावसुन्द, विश्वामित्र तथा उद्द के नाम मिलते हैं। उद्द तो निश्चित रूप से उज्झ है तथा कुम्भावसुन्द और विश्वामित्र में से एक की पहचान आधुनिक वैसन्तर से की जा सकती है ।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण की बहुत सी कथायें इसी डुग्गर प्रदेश से सम्बन्ध रखती हैं । मद्र देश का राजा पुरुरवा जब सौन्दर्य प्राप्ति के लिए हिमपर्वत को गया तो उसे रास्ते में ऊर्द्ध (आधुनिक उज्झ) नदी को पार करना पड़ा था ।

मरुप्रदेश में रहते हुए एक प्रेत के पूर्व जन्म की कथा में उसे शाकल देश का बनिया कहा गया है। एक बार वह बनिया अपने पड़ोसी ब्राह्मण के साथ तौषी और चन्द्रभागा के संगम पर स्नान करने के लिए गया था, जहां भाद्रपद की श्रवणद्वादशी को दही चावल से भरा घड़ा दान देने से उसे दूसरे जन्म में मरुस्थल में भी दही चावल से भरा घड़ा प्रतिदिन मिलता रहा । इस पुराण में भी चन्द्रभागा के जल को शीतल और तौषी के जल को सूर्य से तपा हुआ बताया गया है । तौषी सूर्य की पुत्री कही गई है तथा चन्द्रभागा को चन्द्र के अंश से निर्मित बताया गया है ।

१६३वें अध्याय में पवित्र नदीसंगमों की सूची में व्यास सतलुज संगम, रावी सिन्धु संगम, चनाब जेहलम संगम तथा जेहलम सिन्धु संगम उल्लिखिति हैं ।

रामायण के पात्रों से सम्बन्धित एक कथा में विष्णुधर्मोत्तर पुराण डुग्गर का वर्णन प्रस्तुत करता है । गन्धर्वों द्वारा सिन्धु नदी के दोनों किनारों का प्रदेश हथिया लिये जाने पर केकय के राजा युधाजित् ने श्री रामचन्द्र जी को सन्देश भेजा । श्री राम ने गन्धर्व विजय के लिए भरत को नियुक्त किया । भरत की इस युद्ध यात्रा के विवरण में डुग्गर प्रदेश की नदियों, तीर्थों तथा राजाओं का वर्णन मिलता है । अयोध्या से चल कर, गंगा, यमुना नदियों को पार करके कुरुक्षेत्र से होते हुए भरत गौरी नदी के किनारे पहुंचे । इस पुराण में गौरी नदी का ही दूसरा नाम शतद्रु बताया गया है ।

सतलुज के बाद उन्होंने विपाशा (व्यास) नदी पार की। वहीं पर कुणिंदों का राजा महोदय, त्रिगर्त का राजा वसुधान, कुलूत का राजा जय तथा दाशेरक का राजा गोवाशन उन से मिले। वहां से आगे बढ़ कर उन्होंने रावी पार की जहाँ मद्रेश अंशुमान् तथा और पांच पहाड़ी राजा उनकी सहायता के लिए आ पहुंचे। चन्द्रभागा को पार करके उन्हें अभिसार का राजा कृतञ्जय और कश्मीर का राजा सुबाहु मिले। फिर वे सब केकय देश पहुंचे। सिन्धु नदी के किनारे बड़ा घोर युद्ध हुआ जिसमें कुणिद, त्रिगर्त्त कुलूत, दाशेरक, मद्र, दार्व, अभिसार, केकय, कश्मीर तथा पहाड़ी प्रदेश के अन्य पांच राजाओं ने भरत की ओर से भाग लिया। यह पांच पहाड़ी राजा जिन के नामों का उल्लेख नहीं है, डुग्गर प्रदेश के राजा ही प्रतीत होते हैं।

अन्य संस्कृत ग्रन्थों में डुग्गर

पाणिनि की अष्टाध्यायी में इस प्रदेश के कई जनपदों केकय, मद्र, त्रिगर्त्त, उदुंबर के नाम मिलते हैं। त्रिगर्त्त के छः आयुधजीवी संघराज्यों का उल्लेख पाणिनी ने किया है जिनके नाम काशिका में कौंडोपरथ, दण्डकि, क्रोष्टकि, जालमान, ब्राह्मगुप्त तथा जानकि दिए हैं। सिन्ध्वादिगण में उल्लिखित गब्दिक की समता डॉ० अग्रवाल ने चम्बा में गद्दियों के गद्देरन से की है। दो नदियों उद्य तथा भिद्य की पहचान उज्झ तथा उज्झ के लगभग १५ मील पश्चिम में बई नदी से की गई है। पतंजलि के महाभाष्य में भी केकय, मद्र, त्रिगर्त्त, उदुम्बर का उल्लेख है। वाहीक के नगरों तथा ग्रामों की सूची में शाकल (सियालकोट) तथा पातानप्रस्थ (सम्भवतः पठानकोट) का उल्लेख है। देविका नदी के तट पर उत्पन्न होने वाली शालि को दाविकामूल कहा गया है।

वराहमिहिर की बृहत्संहिता तथा राजशेखर की काव्यमीमांसा में भी इन जनपदों के नाम मिलते हैं। कल्हण की राजतरंगिणी में इस प्रदेश के बहुत से भाग जैसे भद्रावकाश (भद्रवाह), काष्ठवाट (किश्तवाड़), चम्पा (चम्बा), दार्वाभिसार (पुंछ, राजौरी, नौशेहरा), राजपुरी (रजौरी, पर्णोत्स (पुंछ), वल्लापुर (बलावर) तथा बद्धापुर (सम्भवतः बब्बापुर पाठ चाहिए, बवौर) उल्लिखित हैं।

इस प्रकार ऋग्वेद के ऋषियों से लेकर १२वीं शती तक के संस्कृत साहित्यकार डुग्गर भूमि से परिचित रहे हैं। प्रदेश का नाम कालविशेष में कुछ भी रहा हो, भूमि वही है जिस के वीरों की गाथाएं ऋग्वेद के युग से प्रारम्भ हो कर महाभारत और पुराणों में गूंजती हुई आज भी उसी स्वर में नेफा और हिमालय की चोटियों पर सुनाई दे रही हैं।

कश्मीर के शासक सुलतान शिहाबुद्दीन के समय का

संस्कृत[1] लेख

केदारनाथ शास्त्री

यह प्राचीन संस्कृत अभिलेख एक काले पत्थर के फलक पर शारदा-लिपि में लिखा है। फलक चतुर्भुज के आकार का बना है और इसका ऊपर का भाग मेहराब की शक्ल का है। फलक के किनारों पर अलंकरण के रूप में डोरिया बांधा पड़ा है। पाषाण-पट्ट पर लिखा संस्कृत लेख श्लोक बद्ध है। लेखन-शैली बहुत भद्दी तथा संस्कृत अत्यन्त अशुद्ध है। ऐसा होने पर भी इस अभिलेख का ऐतिहासिक दृष्टि से अपना महत्त्व है। लेख सत्तरह पंक्तियों में विभक्त है जिन में से अन्त की छः पंक्तियां खण्डित होने के कारण अपूर्ण हैं। विकृत अक्षर, अशुद्ध संस्कृत तथा छिन्न भिन्नता आदि दोषों के कारण यद्यपि सारे लेख का पूरा वाचन तथा अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो सका है तथापि असंदिग्ध रूप से जो स्थल पढ़े गये हैं उनसे कई एक तथ्यों का पता लगा है। यह लेख यशोदा नाम की किसी महिला ने एक कुएं की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में लिखवा कर लेख वाली शिला को कुएं के अन्दर लगवा दिया था जिससे इस पुण्यकार्य की स्मृति चिरकाल तक स्थायी रहे। लेख की पहली पंक्ति में लिखा है "...शोदामिधा पुण्यमिदं चकार" जिसका अर्थ है "[य] शोदा नाम की किसी महिला ने यह पुण्य कार्य किया" आदि। इससे यह मालूम नहीं होता कि पूर्वोक्त महिला ने जिस धर्म कार्य का निष्पादन किया था वह कुंआ था। इस तथ्य का पता मुझे तब लगा जब श्री प्रताप संग्रहालय के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल भान ने मुझे बतलाया कि यह लेखांकित शिला उन्हें एक कुएं के अन्दर दीवार पर लगी हुई मिली थी।

१. यह लेखांकित शिला इस समय श्री प्रताप संग्रहालय श्रीनगर (काश्मीर) में प्रदर्शित है।

इससे निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि वह धर्म कार्य जिसकी चर्चा लेख की पहली पंक्ति में आती है, अवश्य वही कुआं था जिस में यह शिला लगी थी।

कुएं का निर्माण तथा लेखांकित शिला की स्थापना कश्मीर के शासक सुलतान शिहाबुद्दीन के काल में हुई थी। इस सुलतान का शासन काल ई० सन् १३५४ से १३७३ था। यह बड़ा प्रतापी सुलतान था। इसने उत्तरी भारत के कई प्रान्तों को जीत कर वहां अपना आधिपत्य स्थापित किया। शिला पर अंकित लेख इस प्रकार है :

पंक्ति	१	शोदामिधा पुण्यमिदं चकार.........ए
,,	२	भज्ञदेव गटि सिंगवेन ग्राहितं धा............
,,	३	शिखिगणजाजक: स ४५ वे व ति ११ गुरुवारे
,,	४	ओं स्वस्ति गुगु ओं नमो विग्रहार्ती यश्चाहीन म-
,,	५	पुंर पुष्करजन: हेर म्मो (म्बो) द्यान्महा विघ्न तृणं वह्निक-
,,	६	णोरिव —०— अपत्रत्र ग्रहावत् जा गृहीता ह्यग्रविग्रहा:
,,	७	जीवाश्चिन्मातृमहिमा महिमात्रि (तृ) सुनापनि: ॥१॥ अस्ति
,,	८	स्वस्ति स (सु) खस्तरे पुन्य (ण्य) कश्मीरमण्डले शाहाभदेनो राजेन्द्र श्श्वचीमन्पा-
,,	९	ण्डववंशज: ॥१॥ प्रतापाग्निविशापेन द्रागित: घूर्णिमा ता लापु-
,,	१०	पूरिताश्चन्द्रायुतशुद्धा यशोभरै: ॥२॥ य......श्चण्डकोदण्ड-ज्याघो-
,,	११	षाकर्णयाकुल: दूरं यान्ति द्विष द्वंशा गजोन्मत्तस्य शंकया हाज
,,	१२	त्रासहा येन मद्रानां (णां) महीजिना श्रीगोपण्यादि विजय कथोत्कण्ठा त्रिदश
,,	१३	णा यस्य सौकर्य सत्रत्रा खननदीमता (?) श्री जयन्ता...
,,	१४	णेनेव राघव: । स्त्रित जय प्रीति र्गाखनस्य.........
,,	१५	महा कण्ठ मत्रुति वादिनात्र। दौवारि.........
,,	१६	दर्पशठा (?) सहृदया.........ते-ये.........
,,	१७	ज्ये वै आख क्षापण (?) द्विदश (?)

पांडव वंश

इस लेख की पंक्ति संख्या १ में लिखा है कि किसी महिला ने जिसका नाम सम्भवत: यशोदा था, इस पुण्य कार्य (इष्टा पूर्ति) का निर्माण कराया। पंक्ति ३ में इस पुण्यकार्य की प्रतिष्ठा की तिथि दी है। लौकिक संवत् ४५, गुरुवार, वैशाख महीने के कृष्ण पक्ष की एकादशी। पंक्ति ४ से ७ तक के श्लोकों में हेरम्ब अर्थात् विघ्नहरण गणेश की स्तुति का गायन है जो मंगल कार्यों में विघ्न पैदा करने वाली समस्त बाधाओं का निवारण करते हैं। इसमें लिखा गया है कि गणेश विघ्न राशियों को इस प्रकार भस्म कर देते हैं जैसे दावानल सूखे तृणों के ढेर को। ८ से १७ तक की पंक्तियों में कश्मीर के प्रतापी सुलतान शिहाबुद्दीन के पराक्रम और विजयों का वर्णन किया गया है जिसके समय में कूप का निर्माण किया गया। और इस घटना की स्मृति को चिर-स्थायी बनाने के लिए लेखांकित शिला का प्रतिष्ठापन किया गया। ८ और ९ संख्या की पंक्तियों में सुलतान शिहाबुद्दीन को 'पांडव वंशज' अर्थात् 'पांडव वंश में पैदा हुआ' कहा गया है। इससे उसका सम्बन्ध भारत के चन्द्रवंशी राजाओं से मिला दिया गया है। इससे पता लगता है कि सुलतान अपने आपको अवश्य 'पांडव वंशज' कहता होगा और ऐसा कहने में वह विशेष सम्मान और गौरव अनुभव करता होगा। प्रश्न उठता है कि वह अपने आप को पांडव वंश का क्यों कहता था। इसका यही समाधान हो सकता है कि वह अपने पूर्व पुरुष शाहमीर द्वारा किए गए हिन्दू राजवंश के उच्छेदन रूपी महा कलङ्क को छुपाना चाहता था। कहने का तात्पर्य यह था कि उच्छिन्न हिन्दू राजवंश के स्थान में शासन करने वाले मेरे वंश के लोग भी कोई विदेशी नहीं थे किन्तु भारत के प्रसिद्ध पांडव वंश की ही सन्तान थे।

यश वर्णन

९ से १४ तक की पंक्तियों में सुलतान शिहाबुद्दीन की विजयों का वर्णन है। उल्लेख है कि उसके प्रताप की प्रचंड प्रखरता को सहन न करते हुए उसके शत्रु अपना देश त्याग कर देशान्तरों में चले गये। उसके विजय की धवलिमा की बाढ़ ने संसार को इतना उज्जवल बना दिया मानों एक साथ हजारों चन्द्रमाओं की चन्द्रिका की बाढ़ उमड़ आई हो। उसके विजयी महाधनुष की भीषण टंकार को सुनकर उसके शत्रुओं के धैर्य के बांध टूट गये और यह समझ कर कि यह धनुष की टंकार नहीं किन्तु पीछा करते हुए मस्त हाथियों की चिंघाड़ है, वे युद्धस्थल से भाग गए। पंक्ति नं० १४ में सुलतान को धनुष विद्या में राघव अर्थात् अयोध्या के राजकुमार श्रीराम से संतुलित किया गया है।

मद्रदेश पर विजय

पंक्ति नं० १२ में उल्लेख है कि सुलतान शिहाबुद्दीन ने मद्रदेश को जीता और युद्ध में उन्हें जीतकर उनकी भूमि को कश्मीर-राज्य में मिला लिया। कुछ लेखकों का मत है कि व्यासा और वितस्ता नदियों के अन्तर्गत प्रदेश का नाम मद्र था परन्तु दूसरों के विचार में मद्रदेश व्यासा तथा चन्द्रभागा के बीच पड़ता था। महाभारत एवं पुराणादि ग्रन्थों की व्याख्या के अनुसार मद्रदेश लम्बाई में उत्तर से दक्षिण की ओर फैला था। उत्तर में इसकी सीमा बहिर्गिरि पहाड़ियाँ थीं जहां पंजाब का मैदान कंडी की पहाड़ियों से टकराता है। और दक्षिण में इसकी सीमा ज़िला मुलतान थी। महाभारत के कर्ण पर्व में मद्र देश के वर्णन-प्रसंग में लिखा है कि इस प्रान्त में शमी (जंड), पीलु और करीर के वृक्षों के घने जंगल हैं जहां लुटेरे आते जाते राहियों को लूट लेते हैं।[1] इन वृक्षों के घने जंगल इस समय केवल मुलतान, मंटगुमरी, लायलपुर आदि ज़िलों में मिलते हैं। कनिंघम ने लिखा है कि ७वीं सदी ईसवी में चीनी यात्री ह्यू न सांग को भी इसी जंगल में लुटेरों ने लूट लिया था। इसलिए शमी, चील, करीर के जंगल मद्रदेश की विशेषता थी। कंडी की पहाड़ियों (वहिर्गिरि) वाला सूखा इलाका और अंदर की पहाड़ियों (अन्तर्गिरि) पहाड़ियों वाला जलबहुल प्रदेश 'दार्व' के नाम से पुकारा जाता था। इसी तरह चन्द्रभागा और वितस्ता के बीच का वैसा ही पहाड़ी इलाका 'अभिसार' के नाम से चिर-विख्यात था। इन दोनों पहाड़ी प्रान्तों का संयुक्त नाम दार्वाभिसार था। इस संयुक्त प्रदेश में आधुनिक पुंछ, कोटली, राजौरी, नौशहरा, भिम्बर, अखनूर, जम्मू, रियासी, बसोहली आदि सभी स्थान समाविष्ट थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जम्मू और इस के आस-पास का पहाड़ी इलाका जिसे डुग्गर कहते हैं मद्र देश के अन्तर्गत नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक देविका-माहात्म्य आदि ग्रन्थों में इस 'दार्व' प्रदेश को मद्रदेश का भाग माना गया है। परन्तु यह माहात्मय लिखने वाले की शुद्ध कपोल-कल्पना है। शास्त्रों में कहीं इस प्रान्त को मद्रदेश के नाम से व्यवहृत नहीं किया गया।

क्या डुग्गर मद्रदेश के अन्तर्गत था ?

पूर्वोक्त शिलालेख में लिखा है कि सुलतान शिहाबुद्दीन ने मद्रदेश जीता और इसे कश्मीर राज्य में शामिल कर लिया। डॉक्टर फ्लीट के मतानुसार मद्र-देश की राजधानी शाकल थी जिसे उसने तथा विख्यात पुरातत्वज्ञ कनिंघम ने

---

१. शमी पीलु करी राणां   वर्त्मनु आदि।

आधुनिक स्यालकोट से एकात्म सिद्ध किया है। जनश्रुति के आधार पर जो परम्परा उपलब्ध होती है उससे पता लगता है कि शाकल को राजा शल्य ने बसाया था। मद्रदेश का राजा शल्य महाभारत युद्ध में कौरवों की सेना का अन्तिम सेनापति था। महाभारत में लिखा है कि शाकल नगर आपगा (आधुनिक ऐक) नदी के तट पर बसा था। प्राचीन संस्कृत साहित्य में मद्रदेश के निवासियों को मद्र, आरट्ट, जार्त्तिक, वाहीक, बाल्हीक आदि कई नामों से लिखा गया है।

जोनराज, श्रीवर और प्राज्यभट्ट नाम कश्मीरी पंडितों की लिखी यथाक्रम दूसरी, तीसरी और चौथी राजतरंगिणियों में लिखा है कि कश्मीर के सुलतानों के शासनकाल में मद्रदेश कश्मीर के अधीन एक राज्य था। यह भी उल्लेख मिलता है कि कई सुलतानों ने मद्र देश के राजाओं की लड़कियों से विवाह किया। श्रीवर की तृतीया राजतरंगिणी में लिखा है कि सुलतान सिकंदर बुतशिकन (ई० १३८९-१४१३) के बड़े लड़के नूरखान ने मद्र के राजा की पुत्री व्याही थी। इतिहासकारों ने मद्र देश का अनुवाद 'जम्मू' कर दिया है जो युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। सिकंदर की मृत्यु के अनन्तर उसका बड़ा बेटा नूरखान सुलतान अलीशाह के लकब से कश्मीर के सिंहासन पर बैठा। कुछ समय के बाद इसके छोटे भाई शाही खान ने इसे पराजित करके सुलतान ज़ैनुल्-आबिदीन के लक़ब से सिंहासन स्वयं सभाला। सिंहासन से पदच्युत होकर नूरखान ने अपने सुसर मद्र के राजा महेन्द्र के पास शरण ली। यहां भी मद्र का अनुवाद 'जम्मू' से किया है और लिखा है कि नूरखान ने अपने सुसर जम्मू के राजा महेन्द्र के यहां शरण ली। मुसलमान इतिहासकारों ने लिखा है कि खशराज जसरथ का जम्मू के राजा से निरन्तर लड़ाई झगड़ा होता रहता था। इस समय जम्मू का राजा भीम था जो बाद में जसरथ खोखर से लड़ाई करता करता मारा गया।

श्री बमज़ाई अपने 'कश्मीर का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि सुलतान ज़ैन-उल-आबिदीन (ई० १३५४-७३) ने जम्मू की राजकुमारी से शादी की जिसने चार पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम थे आदम, हाजी, जसरत और बहराम। इन में से आदमखान अपने मामा जम्मू के राजा मानकदेव के पास चला गया जहां वह तुर्कों के साथ लड़ता लड़ता मारा गया।

कश्मीर के प्रसिद्ध सेनापति ताज़ी भट्ट ने राज्यभ्रष्ट अपने स्वामी सुलतान हसनशाह (ई० १४७२-८४) को पुन: कश्मीर के सिंहासन पर बैठाने के लिए जम्मू के लोगों से सहायता मांगी थी। इसी सहायता के बलबोते पर उसने स्यालकोट पर चढ़ाई की और उसे खूब लूटा। श्री बमजाई के इतिहास से हमें

इस बात का पता भी चलता है कि दिल्ली के सम्राट् बहलोल लोदी द्वारा नियुक्त पंजाब का पठान गवर्नर जम्मू के निवासियों जो बहुत सता रहा था। इस गवर्नर का सदर मुकाम स्यालकोट था। इस संकट से छुटकारा पाने के लिये जम्मू के लोगों ने सेनापति ताज़ी भट्ट को आमंत्रित किया। पुन: जब सुलतान मुहम्मदशाह के शासनकाल में (ई० १४८४-८६) उसका वजीर सय्यद हसन कश्मीर के निवासियों को सता रहा था, तो कश्मीरियों ने जम्मू से सहायता मांगी थी। सुलतान जैनुल्-आबिदीन के चौथे बेटे बहराम की पत्नी का नाम सोबना देवी था। श्रीवर ने तीसरी राजतरंगिणी में लिखा है कि मद्रदेश की सेना जो कश्मीरियों की सहायता के लिए आई, नाटे सिपाहियों की बनी थी। परन्तु जब ये नाटे वीर ढाल तलवार ले रणभूमि में उतरते थे तो इनको रोकना असम्भव हो जाता था। इस मद्रसेना का सेनापति राजा परशुराम था।

श्रीवर ने यह भी लिखा है कि जैनुल्-आबिदीन के बड़े बेटे आदमखान का बेटा फतह खान, अपने बाप की मृत्यु के अनन्तर अपने मामा मद्रराज की शरण में ही रहा और पला। यहां भी इतिहासकारों ने मद्रराज को जम्मू का राजा बना दिया है। अनन्तर इस फतहखान को कश्मीर के निवासी कश्मीर में ले गये थे और वहां यह उनकी मदद से सुलतान फतहशाह के नाम से शासक बना। इसका शासनकाल ई० १४८६ से १४९३ है। आगे चलकर श्रीवर लिखता है कि गोपालपुर के एक राजा डुगरसेह था जिसने सुलतान जैबुल्-आबिदीन को उसके विनोद के लिए 'संगीत चूडामणि' नाम सगीतशास्त्र पर एक उत्तम ग्रन्थ भेंट किया। इस घटना का उस सम्बन्ध में वर्णन आता है जहाँ देश देशान्तरों के राजाओं ने सुलतान को विचित्र वस्तुओं के उपहार भेंट किये थे। उदाहरणत: पंचनद के राजा ने सुलतान को अरबी नसल का पंचकल्याण घोड़ा भेजा था, सुराष्ट्र के राजा ने एक विचित्र कलगी भेंट में दी थी, आदि।

जम्मू मद्रदेश में नहीं

जहां कहीं भी राजतरंगिणियों में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि कश्मीर के अमुक सुलतान ने मद्रदेश के अमुक राजा की लड़की से ब्याह किया, उसका यह अभिप्राय नहीं कि जम्मू की रानी की लड़की से ब्याह किया। परन्तु मुस्लिम लेखकों और इतिहासकारों ने इन उल्लेखों का प्राय: यही अर्थ किया है। मेरे विचार में मद्रदेश को जम्मू-केन्द्रित डोगरा प्रान्त समझना युक्ति-संगत नहीं हो सकता, इस प्रकार की विचारधारा के विरुद्ध पहली बात तो यह है कि जम्मू नगर और डोगरा धरती, जिसका यह नगर केन्द्र है कभी मद्रदेश के अन्तर्गत नहीं समझे गए। डोगरा भूमि के निवासी जातीयता के विषय में मद्रदेश

के लोगों से नितान्त भिन्न थे । डोगरा लोग शुद्ध आर्य जाति के थे परन्तु मद्रदेश के लोग जिन्हें आरट्ट, जार्त्तिक बाल्हीक आदि नामों से पुकारते थे, अनार्य एवं वेदवाह्य म्लेच्छ जातियों मे सम्बन्ध रखते थे । जैसा कि ऊपर निर्देश किया गया है डोगरा भूमि दारर्वाभिसार देश का भाग समझी जाती थी ।

दूसरी बात यह है कि जोनराज, श्रीवर आदि लेखकों का मद्रदेश यदि जम्मू नगर और इसके आस पास का डोगरा प्रान्त था तो उन्होंने बजाय मद्र के सीधा जम्मू या डुग्गर देश ही क्यों नहीं लिख दिया । मालूम होता है कि उनको 'डुग्गर' शब्द और इसकी वाचक डुग्गर-भूमि से परिचय था जैसा कि श्रीवर की राजतरङ्गिणी में उल्लिखित डुग्गर-सेह नाम गोपालपुर के राजा की संज्ञा से सिद्ध होता है[1] , तीसरी बात यह है कि ईसवी ग्यारहवीं सदी में जम्मू के आस पास के डुग्गर इलाके को दुर्गर कहते थे । इस तथ्य का पूरा समर्थन चम्बा राज्य से प्राप्त एक ताम्रपट्ट से होता है जिसे डाक्टर कीलहार्न ने प्रकाशित किया था । इस पट्ट में चम्बा राज्य के शासक साहिल्लवर्मन के विजयों का विशद वर्णन है । इसमें अंकित है कि जिस प्रकार वर्षाकाल के नव-जलधर अपने धारासार से वन में लगी दावाग्नि को थोड़े ही समय में शान्त कर देते हैं इसी तरह वीर साहिल्लवर्मन् ने दुर्गर, सौमटिक (सुमडता), कीर और तुरुढकों के समवेत बल को छिन्न-भिन्न कर दिया था[2] । जब ई० ११वीं सदी में जम्मू तथा तत्केन्द्रित डुग्गर-भूमि को दुर्गर कहते थे तो यह समझ में नहीं आता कि वह कौन सी घटना थी जिसके कारण चौदहवीं सदी के मध्य में इसका नाम बदल कर मद्र देश पड़ गया और तब से चतुर्थ राजतरंगिणी के प्रणेता प्राज्य भट्ट के काल तक यही नाम व्यवहार में आता रहा ।

इन तर्कों के आधार पर मैं इस निर्णय पर पहुंच सका हूं कि कश्मीर के सुलतानों के जो विवाह-सम्बन्ध मद्रदेश के राजाओं की राजकुमारियों से हुए वह जम्मू के डोगरा राजवंश की राजकुमारियों से नहीं अपितु मद्रदेश स्यालकोट

---

१. राजा डुगर से हाख्यो गोपालतुर बल्लभः ।
गीत ताल कला वाद्य नाटय लक्षणन्तक्षितम् । आदि

श्रीवर, राजतर०, षष्ठः सर्गः श्लोक १४

२. श्री चम्पकावासकात् परम ब्रह्मण्यो ललाट तट-धटित-विकट-भ्रुकुटि-प्रकट-कुटित-कटक-सौममिक कृत सानाथ्य-दुर्गरेश्वर-समीर-सन्धुक्षित-कीर बल बलवद बाशु शुक्षणि क्षण-क्षणण-नय-जलधरस्य ......

Antiquities of Chamba State by J. Ph. Vogel, P. 184

के हिन्दू राजवंश की लड़कियों से हुए होंगे । उस समय मद्र की राजधानी शाकल नगर समृद्ध दशा में था और कश्मीर के सुलतानों के अधिकार में था ।

अपनी राजतरंगिणी में कवि श्रीवर लिखता है कि सुलतान सिकन्दर बुतशिकन (ई० १३८९-१४१३) के बड़े बेटे नूरखान ने मद्रदेश के राजा महेन्द्र की बेटी व्याही थी । बाद के लेखकों ने मद्र को जम्मू समझ कर लिख दिया है कि नूरखान ने जम्मू के राजा महेन्द्र की बेटी व्याही थी । राजा अवतार देव (ई० ११वीं सदी) के समय से लेकर ईसवी सोलहवीं सदी तक के राजाओं के नाम जम्मू की राजावली में पाए जाते हैं उनमें कहीं भी महेन्द्र नाम वाला कोई राजा नहीं मिलता । श्री बमजाई ने अपने 'कश्मीर का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखा है कि सुलतान जैनुल-आबिदीन ने जम्मू के राजा मानिक देव की लड़की व्याही जिसने चार पुत्रों को जन्म दिया । मैंने चौदहवीं और पंदरहवीं सदियों के जम्मू के राजाओं की वंशावलियों को देखा है । मुझे मानिकदेव नाम का कोई भी राजा नहीं मिला । तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि मानिकदेव जम्मू का राजा था । हमें पुनः इसी इतिहास में उल्लेख मिलता है कि सुलतान मुहम्मद शाह (ई० १४८४-८६) के शासनकाल में वजीर सय्यद हसन काश्मीरियों पर बड़ा अत्याचार कर रहा था । उस समय काश्मीरियों ने इस संकट से मुक्ति पाने के लिए मद्रदेश के लोगों से सहायता मांगी थी । श्रीवर ने राजतरंगिणी में लिखा है कि मद्रवासियों ने इस समय कश्मीरियों की सहायता के लिए राजा परशुराम के नेतृत्व में एक सेना भेजी थी । मद्रदेश के इस परशुराम को हम बाहु के राजा जगदेव के पुत्र परशुरामदेव से संतुलित नहीं कर सकते क्योंकि दोनों के जीवन काल में दो शताब्दियों का अन्तर है । मद्रदेश का परशुराम सुलतान मुहम्मदशाह का समकालीन (१५वीं सदी) था और बाहुराज्य का परशुरामदेव ई० सत्रहवीं सदी में हुआ । अतः सिद्ध होता है कि वह परशुराम जिसने मद्रदेश की सेना का नेतृत्व किया शाकल का निवासी रहा होगा । सम्भवतः वह शाकल के राजवंश से सम्बन्ध रखता था ।

पूर्वोक्त साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर मुझे यह स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है कि राजतरंगिणियों अथवा अन्य ग्रंथों में जहां कहीं मद्रदेश का प्रयोग आता है वह जम्मू राज्य का बोधक है । मेरे विचार में जहां कहीं भी साहित्य में ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि कश्मीर के अमुक सुलतान ने मद्रदेश की राजकुमारी से व्याह किया वहां मद्रदेश का अर्थ जम्मू राज्य न लगा कर शाकल (स्यालकोट) के हिन्दू राजवंश से ही विवाह-सम्बन्ध समझना चाहिए ।

कल्हण की राजतरंगिणी में मद्रदेश का प्रयोग केवल एक स्थान पर ही

देखा गया है । वहां भी मद्र निवासियों की यह कह कर निन्दा की गई है कि उनमें उदारता नहीं हैं और ये संकीर्ण-हृदय के मनुष्य हैं[1] ।

तिमिरलंग और जम्मू

चौदहवीं सदी ईसवी के अन्त में जब तिमिरलंग अपने टिड्डी दल के साथ भारत पर झपटा तो दिल्ली पहुंचने के लिये हिमाचल के बहिर्गिरि मार्ग से प्रयाण करता गया । दिल्ली से लौटते समय उसे जम्मू की पहाड़ियों के साथ साथ जाना पड़ा । जम्मू के निवासी शहर छोड़कर अंदरूनी पहाड़ी इलाके में चले गए । केवल डोगरा नौजवान सिपाही पहाड़ियों की चोटियों पर तथा कठिन मार्गों में आक्रमण को रोकने के लिए मोर्चे बना कर बैठ गए थे । जब तैमूर काँगड़ा के पास से गुजर रहा था तो वहां इसकी फौज के साथ जम्मू के राजा मालदेव ने वीरता से युद्ध किया और अन्त में लड़ते लड़ते वीरगति प्राप्त की । तैमूर के इतिहासकार ने इस आक्रमण के सम्बन्ध में लिखा है कि जम्मू के पास जब तैमूर की फौज पहुंची तो लोगों ने उसका कड़ा मुकाबला किया । लोगों ने तीर कमानों से लड़ाई की और पहाड़ियों पर से शत्रु पर पत्थरों की बारिश की । यह जम्मू नगर का प्राचीन उल्लेख है । इसके पहले जम्मू का नाम कहीं नहीं मिलता । यह आश्चर्य की बात है कि जब ई० चौदहवीं सदी में इस शहर का नाम जम्मू पड़ चुका था तो तीसरी और चौथी राजतरंगिणियों के रचयिता श्रीवर तथा प्राज्यभट्ट ने मद्र के स्थान पर जम्मू का नाम प्रयुक्त क्यों नहीं किया । इसका केवल एक ही समाधान हो सकता है और वह यह कि जम्मू और मद्र भिन्न भिन्न प्रदेशों के द्योतक थे । निष्कर्ष यही निकलता है कि जहां कहीं इन पुस्तकों में मद्रदेश का नाम मिलता है उसका अर्थ 'जम्मू' नहीं, किन्तु शाकल नगर (स्यालकोट) और उसके आस-पास का प्रदेश समझना चाहिए ।

---

१. कल्हण के बृहत् ग्रंथ राजतरंगिणी में मद्रदेश का उल्लेख, जो एक बार ही आता हैं, इस तथ्य का प्रतीक है कि कल्हण के समय कश्मीर के शासकों का मद्रदेश से कहुत कम राजनीतिक सम्बन्ध रहा होगा । उस समय अधिक सम्बन्ध प्रुंत्स, लोहरकोट्ट गांधार, तक्षशिला, सिंहपुर के साथ ही था क्योंकि प्रथम राजतरंगिणी में इन देशों और प्रान्तों का प्रायः उल्लेख आता है ।

महादेवी का भावात्मक रहस्यवाद

प्रो॰ काशीनाथ दर

कई आलोचक महादेवी को आधुनिक युग की मीरा के नाम से पुकारते हैं। वस्तुत: ये दोनों कवयित्रियां दो विभिन्न युगों की उपज हैं। भक्ति काल के वातावरण में मीरा की साकार आराधना समीचीन जान पड़ती है। रूप की उपासना उसकी नस नस में समाई हुई है :

बसो मोरे नयनन में नन्दलाल,
सांवरी सूरत, मोहनी मूरत, नैना भये विसाल।

. × × ×

मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, भक्त वछल, गोपाल ॥

मीरा के गिरिधर भगवान होते हुए भी उनके लिए लौकिक महत्ता लिये हुए हैं। एक उन्मत्त प्रणयिनी की भान्ति मीरा अपना सारा प्रेम उन पर निछावर करती है, शेष कुछ नहीं रखती। आधुनिक युग की बौद्धिक पृष्ठभूमि में निराकार की साधना महादेवी के लिये संगत है। अरूप की पुजारिन होने के नाते इस सहृदय कवयित्री ने अपने युग की मांग को पूरा करने में कोई कसर उठा नहीं रखी है :

कौन तुम मेरे हृदय में
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित।
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित।
अनुसरण विश्वास मेरे कर रहे किसका निरन्तर।
चूमने पदचिन्ह किस के लौटते यह श्वास फिर फिर ॥[1]

---

१. 'यामा' से

इस तरह महादेवी ने व्यक्त को हेय समझ कर अव्यक्त की ओर अपनी कल्पना की डोर फेर दी। महादेवी की निराकार प्रियता उसकी दार्शनिक चिन्तनशैली के अनुकूल थी। मीरा की साकारता में न कहीं मोड़ है और न घुमाव। उसका प्रणय वास्तव में बिना हेर-फेर के सीधे रास्ते और कम समय में अपने इष्ट से एकाकार होना चाहता है। महादेवी में ऐसी कोई व्यग्रता नहीं। वास्तव में वह तो प्रतीक्षा को परिणति से उत्तम मानती है :

मत मिलन का नाम लो
मैं विरह में चिर रहूं।[1]

मीरा संयोग की उपासिका है, जब कि महादेवी वियोग की साधिका। समुचित शिक्षा-दीक्षा के अभाव में सरला मीरा ने भावुकता के आगे हथियार डाल दिये हैं, परन्तु महादेवी में सजग बौद्धिकता होने के कारण वह अपने प्रेम को संयम में रखने में सफल हुई हैं। मीरा का अपने प्रियतम के लिये उन्मुक्त और स्वच्छन्द प्रेम है, महादेवी के प्रेम में सलज्जता के साथ साथ संकोच भी है। मीरा अपने प्रेम की तपन पर ढकना देना नहीं जानती, महादेवी अपने प्रेम के उबाल को मर्यादा के अन्दर ही रखती हैं। यदि निर्गुण निराकार के स्थान पर महादेवी ने सगुण साकार दार्शनिकता अपनायी होती तो उस का काव्यगत सौन्दर्य परोक्ष सत्ता के प्रति आवेदन न हो कर धर्म और सम्प्रदाय का रूप धारण करता। सम्भवतः मीरा अपने आलम्बन का यथोचित चुनाव न कर सकने के कारण इस दोष से बच नहीं पाती। महादेवी ने अपनी अनुभूति को साम्प्रदायिक अन्धविश्वासों से बराबर बचाये रखा है और इस प्रकार प्रकृति-चित्रण के व्याज से वह नश्वरता का मार्मिक उपदेश यूं देती हैं :

रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली।।[2]

मीरा के लिए प्रकृति उपेक्षित है, इसका कोई महत्त्व नहीं, प्रभावोत्पादकता के रूप में भी नहीं। मीरा का प्रकृति के माध्यम से अपने प्रियतम से साक्षात्कार करने में विश्वास नहीं। महादेवी प्रकृति को अपने प्रियतम को पाने में सहायक समझती है। भक्ति के धरातल पर समान रूप से खड़े होकर भी मीरा और महादेवी अपने व्यक्तित्व और आलम्बन की भिन्नता के कारण अपने प्रेम की एक समान अभिव्यक्ति नहीं करती। मीरा के प्रणय-निवेदन में सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी का नारी-हृदय साफ तौर पर बाहर छलक रहा है। यह प्रेम

---

१. 'यामा' से
२. 'यामा' से

अनगढ़ होने के साथ साथ प्रगल्भ भी है। नारी के हृदय पर बीसवीं शताब्दी तक आते आते किन किन संस्कारों और भावनाओं ने अपना रंग चढ़ा दिया है, यह महादेवी के प्रणय से स्पष्ट होता है, अनगढ़ता का परिमार्जन होने के साथ साथ इस युग में इस प्रेम की प्रगल्भता प्रांजलता में बदल गई है, इस तरह यह उत्कट न होकर धीरशान्त गति से प्रवाहित होता रहता है, बुद्धि का योग पाकर इस में भावुकता की अति के कारण संयमहीनता नहीं, उच्छृंखलता नहीं। मीरा ने मन की मौज में बह कर 'जग की लाज' के प्रति आंखें मूंद ली हैं, परन्तु महादेवी ने दोनों के बीच का रास्ता चुन लिया। मीरा का निराश जीवन मुड़ मुड़ कर साकार इन्द्रियजनित रागात्मकता की तरफ लौटना चाहता है। 'गगन मण्डल पर सेज पिया की होते हुए भी उससे मिलने का आकर्षण मीरा टाल नहीं सकती, लोभ संवरण नहीं कर पाती, परन्तु महादेवी आधे रास्ते से वापिस आना नहीं चाहती। अपने इष्ट की मानसिक पूजा में वह चिरमग्न है। साकार पर आश्रित मधुर राग और निराकारावलम्बी करुण विराग में जो अन्तर है वह मीरा और महादेवी के व्यक्तित्व में होना चाहिए। यद्यपि मीरा के पदों का आभार महादेवी ने अपने ऊपर स्वीकार किया है, परन्तु अपने युग की मान्यताओं और मांगों के अनुसार इस सजग कवयित्री ने इनकी दिशा बदल दी है।

महादेवी का भावात्मक रहस्यवाद

इस प्रकार पहले दिये गए पृष्ठों में महादेवी के काव्य के भाव और कलापक्ष का परिचय भले ही मिल जाता है, और यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी कविता में करुण-मधुरिमा का निर्व्याज नर्तन है। महादेवी का छायावाद वास्तव में रहस्यवाद का ही शर्करावेष्ठित संस्करण है। छायावाद की परिधि में रहकर भी उनकी भावनाओं ने निष्प्राण प्रकृति की अपेक्षा अमूर्त अज्ञात के प्रति अपना प्रेम दर्शाया हैं। भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवाद इसके मूल में है। शुक्ल जी के शब्दों में ''छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रहीं हैं'' यद्यपि महादेवी ने अपनी मानसिक अभिव्यक्ति का श्री गणेश छायावाद से ही किया परन्तु प्रसाद को छोड़ कर इस युग के किसी अन्य कवि ने रहस्य की भाव भूमि में प्रविष्ट होने की सामर्थ्य न थी। छायावाद के स्वप्निल वातावरण में महादेवी को प्रकृति का सान्निध्य प्राप्त हुआ। इसे आलम्बना न मानकर चिन्तन प्रधान कवयित्री ने इसे सहचरी ही माना, अतः किसी ग्राह्य आलम्बन का अभाव महादेवी ने अमूर्त प्रियतम के रूप में पूरा किया और बिना किसी आयास के इसकी छाया ने रहस्य का बाना ओढ़ लिया। स्वयं महादेवी के ये शब्द हमारे इस तर्क की पुष्टि करते हैं : ''स्वयं छायावाद

तो करुण की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला भावात्मक रहस्यवाद ही है। महादेवी भारतीय रहस्यवाद के उपकरणों को भावना की रंग भूमि पर इस प्रकार उतार लेती है कि विचार और अनुभूति का एक ऐसा सौन्दर्य प्रधान वाग्विलास जन्म लेता है जिसको देखने और परखने के लिए भौतिक आंखें व्यर्थ बन जाती हैं। अज्ञात सत्ता से आत्मा का चिरन्तन विरह ही तो इस रहस्यवादी वर्णमाला का 'अ' है :

जन्म ही जिसका हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूं उच्छ्वास।
चुरा लिया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली सांस।

छोड़ क्यों देते बारम्बार
मुझे तुम से करने अभिसार।[1]

इस वियोग की आर्द्रता करुणा से बनी रहती है। परोक्ष के प्रति यह आग्रह कभी कभी अतृप्त प्रेम का रूप धारण करता है, और यही अतृप्ति महादेवी के लिए अभिशाप न बन कर वरदान बन जाती है :

खोज ही चिर प्राप्ति का वर
साधना ही सिद्धि सुन्दर।
रुदन में सुख की कथा है
विरह मिलने की प्रथा है।

शलभ बन कर दीप बन जाता
निशा के शेष में॥[2]

"महादेवी जी के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोकविमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है, जिसके अनुसंधान में कभी तृप्ति नहीं।[3] ऐसे अपूर्व जीवन दर्शन से अपनी नस नस को भिगोने के लिए उन्हें भारतीय सर्वात्मवाद से यथेष्ट प्रेरणा मिली है। प्रकृति के परिवेश में कण का वियोग और अज्ञात की पृष्ठभूमि में आत्मा का योग समानान्तर रेखाओं की तरह परवान चढ़ता जाता है, रुकने का नाम नहीं लेता :

कण कण में उर्वर करते लोचन
स्यन्दन भर देता सूनापन।

---

१. 'रश्मि' से।   २. 'यामा' से।
३. डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु—महादेवी वर्मा।

जग का धन मेरा दुख निर्धन
तेरे वैभव की भिक्षुक या
कहलाऊं रानी
बता राजा रे अभिमानी ॥[1]

इस मनस्थिति ने आगे चलकर अद्वैतवाद का हाथ थामा और इस प्रकार साधक और साध्य के बीच की दूरी कटने लगी :

नाश भी हूं मैं अनन्त विकास का क्रम भी
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी।
तार भी आघात भी झंकार की गति भी
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी।
अधर भी हूं और स्मित की चांदनी भी हूं।
बीन भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूं ॥[2]

कभी कभी अपनी ससीम आत्मा को उस अनन्त सत्ता से मिला देने की बात महादेवी यूं करती हैं :

गये तब से कितने युग बीत
हुये कितने दीपक निर्वाण।
नहीं पर पाया मैं ने सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।
नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अंगुली है ढीले तार,
विश्व-वीणा में अपनी आज
मिला दो यह स्फुट झंकार ॥

इतना ही नहीं, अनुभूति की तीव्रता कभी कभी महादेवी के भावना-चिन्तन-अभिषिक्त हृदय को इतना उद्वेलित करती है कि फिर असीम और ससीम के बीच की दीवार निरर्थक जान पड़ती है :

मैं तुम से हूं एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश।

---

१. 'नीरजा से'।
२. 'नीरजा से'।
३. 'नीरजा से'।

मैं तुम से हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित विलास ।।[1]

अत: हम किसी संकोच के बिना कह सकते हैं कि महादेवी की प्रणयानुभूति अलौकिक है । अतृप्त आत्मा की युग युग से चली आई मानसिक प्यास इन की कविता में मुखर हो उठी है. इस में बौद्धिक सजगता के साथ साथ निष्काम आत्मसमर्पण है । यह बौद्धिकता महादेवी का विदुषी होने के कारण उनके काव्य का अनिवार्य अंग भी बन सकती थी, परन्तु भावना का पलड़ा भारी होने के कारण महादेवी ने बौद्धिकता के स्वर को संयम में रख कर अपूर्व कौशल दिखाया है । बुद्धिवाद के विषय में उनके विचार उद्धरणीय हैं :—"इस बुद्धिवाद के युग में मनुष्य भाव पक्ष की सहायता से जीवन को कसने के लिए कोमल कसौटियां क्यों प्रस्तुत करे, भावना की साकारता के लिए अध्यात्म की पीठिका क्यों खोजता रहे, फिर परोक्ष अध्यात्म को प्रत्यक्ष जगत में क्यों प्रतिष्ठित करे, ये सभी प्रश्न सामयिक हैं, पर इन का उत्तर केवल बुद्धि में दिया जा सकेगा ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता क्योंकि बुद्धि का प्रत्येक समाधान अपने साथ प्रश्नों की एक बड़ी संख्या उत्पन्न कर लेता है" ।[2] भावनाओं की तीव्रता के साथ महादेवी ने बुद्धिपक्ष का एक मधुर सन्तुलन स्थापित किया है जिस कारण उन का काव्य न तो कोरी भावुकता और न ही नीरस शुष्कता का पुट ले कर आता है, सरसता के साथ साथ इस में बुद्धिग्राह्य भावुक सौम्यता भी है ।

महादेवी की कविता में वेदना को साकारता मिली है, यह वेदना, यह दु:खवाद कई आलोचको की दृष्टि से अनुभूतिजन्य न होकर अनुमानप्रसूत है ।[3] महादेवी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण सांसारिक न होकर अध्यात्मिक है । वह उसी प्रकार अपने प्रियतम से वियुक्त है जिस प्रकार कबीर अपने 'साहब' से और मीरा अपने 'गिरधर' से हैं । इस वियोग का कंटीला जीवन प्रेमिका को अङ्गारों पर लिटाता है, वियोग का अभिशाप महादेवी में इसलिये अधिक तीव्र और मुखर हो उठा है क्योंकि इसका प्रियतम निराकार है, अलख है । यशोधरा ने राहुल के रूप में अपने पति की निशानी पहचान कर वियोग की घड़ियां रोते-हंसते क़ाटीं । इसके पति-प्रेम ने शिशु-वात्सल्य का रूप धारण करके यशोधरा के

---

१. 'यामा से' ।

२. 'यामा की भूमिका' से ।

३. रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ।

जीवन में कुछ न कुछ सार्थकता अवश्य पैदा की। उर्मिला[1] ने तो 'अवधिशिला के गुरूभार' का चौदह वर्ष के बाद लक्ष्मण के साक्षात्कार से उतार फेंका। लौकिक प्रेम में विरह की अवधि निर्धारित होती है। आध्यात्मिक प्रेम किसी ऐसी अवधि की अपेक्षा नहीं रखता, अत: महादेवी का नैराश्य सतत प्रतीक्षा में बदल कर वेदना तथा पीड़ा का वाहन बन जाता है, इस तरह अपने प्रियतम के प्रति जिस का न कोई रूप है न रंग और जिसके साथ मिलन की कोई शुभ घड़ी निश्चित नहीं, महादेवी की साधना में कोई शिथिलता नहीं आती। कोई अन्य भावुक कवयित्री इस घोर निराशा तले दब कर प्रियतम की बाट जोहते जोहते पथरा गई होती और आधे रास्ते ही लौट आई होती। परन्तु महादेवी इस निराशा को आशा का रूप देकर निरन्तर साधना के मील-पत्थर गिनती जाती। लक्ष्य की उसे कोई चिन्ता नहीं, यह दु:ख, यह मीठी जलन, यह घुटन जीवन से पलायन करने पर बाध्य नहीं करते अपितु इसकी क्षारता के साथ समझौता करने की प्रेरणा देते हैं। इस तरह पीड़ा से आनन्द की अनुभूति महादेवी के लिये स्वभाविक है :

> शृङ्गार कर ले सजनि
>
> तू स्वप्न सुमनों से सजा तन
>
> विरह का उपहार ले।
>
> अगनित युगों की प्यास का
>
> अब नयन अंजन सार ले
>
> अलि मिलन गीत बने मनोरम
>
> नूपुरों की मधुर ध्वनि।[2]

पीड़ा का आनन्द महादेवी की धारणा के अनुसार तब तक ही है जब तक साधना चल रही हो और सिद्धि अभी दूर हो। मुक्ति तो वास्तव में अस्तित्व का नाश है। आनन्द की अनुभूति तब तक ही सम्भव है जब तक अस्तित्व है, परोक्ष मे मिलन नहीं हो पाता, दूसरे शब्दों में महादेवी अमरता को जीवन का ह्रास मानती है।[3] ऐसे जीवन-दर्शन को अपनाने के लिए महादेवी को निरन्तर आंसू बहा कर बहुत भारी कीमत चुकानी पड़ी है। इस दु:खवाद का समर्थन करते हुए कवयित्री वकालत करती है :—अपने दु:खवाद के विषय में भी

---

१. मथिलीशरण गुप्त कृत महाकाव्य साकेत की नायिका।

२. 'यामा' से।

दो शब्द कहना आवश्यक जान पड़ता है, सुख और दुःख की धूप-छांही डोरों से बने हुए जीवन में मुझे दुःख ही केवल गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, बहुत से लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस 'क्यों' का उत्तर मेरे लिये किसी समस्या के सुलझा डालने से कुछ कम नहीं। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से पुकारता है वह मेरे पास नहीं, जीवन में मुझे बहुत दुलार बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुख की छाया न पड़ सकी, कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी हैं"[1] अत: हम महादेवी की अश्रुमुखी वेदना में आनन्द का मधुमास भी पाते हैं। इन के गीत अर्न्तमुखी सूक्ष्मभावनाओं के व्यक्त करने के लिए सजग रागात्मकता के के साथ साथ संगीतात्मकता भी लिए हुए हैं, इस प्रकार अपनी निष्काम साधना में आत्मा विभोर होकर भी कवयित्री आत्मविस्मृति में खो नहीं जाती। उसे अपना और परोक्ष का परिचय हर समय मिलता रहता है :

चित्रित तू मैं हूं रेखा क्रम
मधुर राग तू मैं स्वर संगम
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया—छाया में रहस्यमय
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या।
तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?[2]

अत: महादेवी के भावना के हिण्डोले पर झूलते हुए रहस्य-साधना की तीन अवस्थायें हमारे सामने स्पष्ट रूप से आती हैं। इसमें जिज्ञासा और कौतूहल कुछ समय के लिए उनकी चेतना को उद्वेलित करते हैं। अज्ञात के प्रति उनका प्रेम दर्शन पहली अवस्था में वैसे ही धुंधला है जैसे स्वयं अज्ञात। इस मनस्थिति में उन्हें जिस प्रकार अज्ञात का कोई परिचय नहीं वैसे ही अपने सम्बन्ध में भी वह भावनाओं की तीव्रता के कारण अनभिज्ञ सी हैं। आत्मज्ञान के साथ साथ वह इस मनोदशा में परोक्ष ज्ञान के लिए भी उत्कण्ठित है :

बाहर घनतम भीतर दुखतम
नभ में विद्युत तुझ में प्रियतम।
जीवन पावसरात बनाने
सुधि बन छाया कौन ?[3]

---

१. 'यामा' की भूमिका से।
२. 'नीरजा' से।
३. 'नीरजा' से।

दूसरी अवस्था में उनका आकुल प्रेम-दर्शन अज्ञात के प्रति प्रणय-निवेदन बन जाता है, साधना की मीठी चिंगारियों से अभिषिक्त होकर महादेवी परोक्ष की महत्ता को जान पाती है, परन्तु वैयक्तिक अहं की प्रगल्भता के कारण अपनी महत्ता का भी स्वर अलापती जाती है। इस प्रकार अद्वैतवादियों की तरह ब्रह्म में लीन होने के लिए उसे अपने अस्तित्व का हृदय किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं :

यह क्षण क्या, द्रुत मेरा स्पन्दन
यह रज क्या, नव मेरा मृदु तन।
यह जग क्या, लघु मेरा दर्पण
प्रिय तुम क्या, चिर मेरा जीवन॥[1]

इस रहस्यसाधना की तीसरी अवस्था पर उनकी आकुलता, अधीरता सब धुलकर परोक्ष के प्रति आत्मसमर्पण का रूप लेते भली भान्ति स्पष्ट होती है। साधना की आंच से अब साधक और साध्य के बीच मोम की दीवार पिघल चुकी है। प्रत्यक्ष और परोक्ष की सीमायें कट चुकी हैं, इस प्रकार कवयित्री प्रिय का साक्षात्कार करके अमर सुहागन बन जाती है[2], प्रेम-दर्शन की पहली अवस्था में नारी-सुलभ झिझक है, संकोच है, प्रणय-निवेदन की दूसरी अवस्था में प्रश्न है, जिज्ञासा और आत्मसमर्पण की तीसरी अवस्था में महादेवी का हृदय 'निर्वात-निष्कम्पमिवप्रदीपम्'[3] की प्रतिलिपि बन जाता है, सब झिझक धुल जाती है, जिज्ञासा शान्त हो जाती है और शंकाओं का समाधान हो जाता। इस मनस्थिति की प्रति-ध्वनि हमें महादेवी के इस पद्य से अनायास मिल जाती है :

अलि कहां सन्देश भेजूं
मैं कहां सन्देश भेजूं।

नयन पथ से स्वप्न में मिल
प्यास में घुल साथ में खिल

प्रिय मुझी में खो गया
अब दूत को किस देश भेजूं॥[4]

यही मनोदशा अद्वैतवाद की चरमकोटि है, आत्मा और परमात्मा, जीव

---

१. 'यामा' से।
२. 'नीरजा' से।
३. 'गीता' से।
४. 'यामा' से।

और ब्रह्म, ससीम और असीम एकाकार हो उठते हैं और विरह और मिलन पर्याय बन जाते हैं :

मैं मिटी निःसीम प्रिय में
वह गया बन्ध लघु हृदय में ।
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह ।[1]

यही 'महामिलन' जीव की छटपटाहट को शान्त मधुरिमा से भिगो देता है। इस एकरूपता में कलियों का फूल बनने से पहला कुंवारा सौन्दर्य है, चांदनी में नहाते हुए लहरियों का बनता-बिगड़ता उल्लास है और उगते हुए सूर्य की निष्कलङ्क अरुण-मुस्कान है ।

महादेवी ने इस तरह रहस्यवाद को शुष्क मस्तिष्क का व्यायाम न मान कर इसे अपनी भावात्मक अनुभूतियों का सजीव आलम्बन प्रदान किया जिसके फलस्वरूप रहस्य की अन्वेषणात्मक अनुभूति में एक और अध्याय जुड़ गया परन्तु फिर भी इनके व्यक्तित्व के विषय में कोई अन्तिम निर्णय देना अभी संगत न होगा :

पर न मैं अब तक व्यथा का छन्द अन्तिम गा चुकी हूं[2]

इस प्रकार उन्हें अभी बहुत-कुछ खोना है, बहुत कुछ पाना है और बहुत-कुछ कहना है। सम्भव है कि भविष्य उनके विषय में उनकी ही वाणी द्वारा नये तथ्य उगल दे । तब तक तो हमें उनकी साधना के इस ज्वलन्त प्रतीक पर ही सन्तोष करना होगा :

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर ।
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल के मृदुतन
दे प्रकाश - सिन्धु अपरिमित

---

२. 'यामा' से ।
३. 'यामा' से ।

तेरे जीवन का अणु गल - गल।

मधुर मधुर मेरे दीपक जल ।।[1]

ऐसे मर्मभेदी सारगर्भित और संश्लिष्ट आत्म-परिचय में कोई अन्य अक्षर जोड़ना अन्याय होगा । उनकी इस अविराम साधना में करुण-तपन है, मधुर-आवेग है और सनातन आलोक है ।

---

४. 'नीरजा' से।

निराला की दार्शनिकता के स्रोत

डॉ॰ मुहम्मद अयूब खां

निराला स्वच्छन्दतावादी युग की सृष्टि हैं लेकिन उन्होंने अपने आविर्भाव से युगान्तर उपस्थित किया है। स्वच्छन्दतावाद का दर्शन सर्वात्मवाद अथवा नवीन रहस्यवाद है जिस के मूल में उपनिषदों की विचारधारा का संचार हुआ है। निराला का व्यक्तित्व औपनिषदिक आत्मचेता ऋषियों के समान ही विकसित हुआ है। वैसवाड़े की उन्मुक्त प्रकृति के बीच उनके चिंतन को जो प्रेरणा मिली है उसका प्रभाव गुप्त न रह सका। आलोक की मधुर किरणों से झिलमिलाता निराला का सौम्य व्यक्तित्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को अभिभूत करने में समर्थ हुआ। जब रामकृष्ण मिशन वालों ने आचार्य द्विवेदी से 'समन्वय' प्रकाशन के लिए एक वेदान्ती की मांग की तो उन्होंने पं॰ सूर्य कान्त त्रिपाठी का चुनाव ही नहीं किया अपितु उसके सम्पादन के कार्य-भार को संभालने का अनुरोध भी किया। "जीवन से विरक्त, परिवार के स्वजनों से अनाथ, बंगाली सामन्तशाही में परिपुष्ट और पोषित, लेकिन उसी सामन्तशाही से विद्रोह किये एक सुकुमार और सुन्दर युवक स्वामी विवेकानन्द के ज्ञानपीठ में अध्यात्मवाद से अपनी आन्तरिक मूर्छित शान्ति को पुनः सजीव करने के लिए कलकत्ता में आ ठहरा"[1]। रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' नामक आध्यात्मिक मासिक पत्र का निराला ने बड़ी सफलता के साथ सम्पादन किया। इसके साथ ही जीवन में संन्यास का गुरुमन्त्र लेकर एकनिष्ठ भाव से कर्मठ जीवन को मधुर भाव-प्रवण-काव्य के रूप में अभिव्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार निराला जी कठोर-आध्यात्मिक साधना को सरस बनाते हुए संन्यासियों

---

१. 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रंथ' श्री बरुआ—कलकत्ता में श्री निराला जी पृ॰ २६

के बीच परमप्रिय बन गए। यहां उन्होंने उपनिषदों का और भी गम्भीर अध्ययन किया।

निराला उपनिषदों के तत्त्व द्रष्टा तथा वेदान्त के मर्मज्ञ हैं। स्वामी राम कृष्ण की भक्तिभावना का उनके ऊपर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। उसके पश्चात् वेदान्ती विचारों को आत्मसात करते हुए निराला एक प्रकार से बन्धन-मुक्त हो गए। आश्रम की स्थविरता से ऊबकर अनेक अद्वैतवादी ग्रंथों का अनुवाद करने के पश्चात् वे समन्वय' जैसे आध्यात्मिक पत्र का सम्पादन छोड़कर 'मतवाला' में चले गये। विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त को 'समन्वय' काल में उन्होंने हृदयंगम कर लिया था, उसी की अभिव्यक्ति अब निराला के गीतों में होने लगी। 'समन्वय' में प्रकाशित निराला के निबन्ध[1] इस बात के साक्षी हैं कि निराला ने विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन को केवल समझा ही नहीं वरन् उसको वाणी भी प्रदान की। 'मतवाला' काल के बाद भी विवेकानन्द का कर्मयोग रामकृष्ण के शक्ति-आवाहन के रूप में केवल निराला ने ही मुखरित किया है। निराला की 'मां' शक्ति-रूपा है जो सांसारिक द्वैत भाव का विनाश कर सकती है और जिस में सच्चिदानन्द ब्रह्म ही प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि निराला ने सर्वत्र आस्था और विश्वास के स्वर ध्वनित किए हैं। इन स्वरों को विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन ने ही प्रजनित किया है। निराला ने इसी आत्मविश्वास के बल पर मायातीत, स्रष्टा, एवं द्रष्टा और अनश्वर ब्रह्म के समान ही अपने अहं को उसकी अनुकृति माना है। निराला के अद्वैतचिंतन के परिवेश में सर्वत्र जीवात्मा की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। यही कारण है कि उनके काव्य में व्यक्ति-जागरण आत्मोन्नयन, अतीत गौरव, पुनरुत्थान, आत्मबोध तथा भारतीय जागरण की उद्‌गीतियां सुनाई देती हैं। इस प्रकार निराला ने अद्वैतवाद की नयी व्याख्या की है।

निराला का वेदान्त बौद्धिक तथा रागात्मक दोनों रूपों में समभावेन व्यक्त हुआ। बौद्धिक रूप में विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त में कर्मयोग की विवृत्ति हुई है तथा रागात्मक रूप में स्वामी रामकृष्ण की भक्तिभावना तथा अद्वैतवादी रहस्यवाद को अनुराग तथा करुणा के द्वारा सरस रूप में पुष्ट किया है। विवेकानन्द के मतानुसार भी प्रेम संघातिमका शक्ति है और घृणा विघटन-

---

१. (१) समन्वय: वर्ष ६, अंक १० —'स्वामी सारदानन्द जी महाराज से वार्तालाप'।

(२) समन्वय: वर्ष ७, अंक ८—युगावतार भगवान श्री कृष्ण।

(३) ,, ८ ,, २—वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द जी।

कारी अनेकत्व विधायिका शक्ति[1]। निराला के काव्य में अद्वैतवाद की यही परिणति रहस्यवाद की संज्ञा पाती है। दर्शन के भावना-प्रधान तथा चिंतनप्रधान रूपों से निराला को कवि का हृदय तथा दार्शनिक का मस्तिष्क मिला है।

यहां यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि विनयपरक गीतों में अथवा रहस्यवादी प्रेमपरक कविताओं में जहां दार्शनिक परिणति होती है वहां वे रवीन्द्र की विचारधारा से अनुप्रेरित हैं। यह दार्शनिक परिणति काव्य का ही एकात्म रूप हो जाता है। शृंगार-वर्णन में जहां भी दार्शनिक परिणति होती है वहां रवीन्द्र की सी भाव-प्रवणता दिखाई देती है। ऐसे स्थलों पर निराला के दार्शनिक चिन्तन में नारी के प्रति उदारता, ब्रह्मसमाज के द्वारा दी गई उपनिषदों की सी भावपूर्ण रहस्य-दृष्टि तथा कबीर की कोमल, करुण, मसृण अनभूतियों की विशिष्टता जिस प्रकार रवीन्द्र के काव्य को अनुप्राणित करती रही है उसी प्रकार निराला के काव्य को प्रेरणा देती रही है। "आधुनिक युग में रवि बाबू ने कबीर से प्रभाव ग्रहण कर काव्य में दर्शन को स्थान दिया। इनका प्रभाव हिन्दी के छायावादी कवियों पर भी पड़ा। इस दार्शनिक विचारधारा की ओर निराला विशेष रूप से उन्मुख हुए।"[2] लेकिन रवीन्द्र जहां भावाकुल, मधु भीगे, वेदनामय मदिर रहस्यवादी गीतों के ही गायक हैं वहां निराला आत्मिक ओज से आप्यायित, संघर्षप्रधान, अनुभूति परक तथा भावप्रवण गीतों की सृष्टि करने में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने दोनों रूपों पर समभावेन अधिकार प्राप्त किया है। रवीन्द्र के चिंतन के स्रोत ब्रह्म समाज, कबीर और विवेकानन्द हैं और निराला ने रवीन्द्र से इन्हीं स्रोतों को पाकर एक मौलिक चिंतन में ढालने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि निराला रवीन्द्र का प्रभाव स्वीकार करते हुए भी अपने काव्य में उदात्तरूप अनुभव करते हैं। प्राय: निराला कभी कभी रवीन्द्र की कविताओं का पाठ भावभंगिमा तथा रस-निमग्नता के साथ करते करते उनकी कविताओं से अपनी कविताओं की तुलना करने लगते थे। "सौभाग्य से यदि उन्होंने रवीन्द्र की कतिपय कविताओं से अपनी कविताओं की तुलना शुरू करदी, तब तो निश्चय ही एक ऐसे साहित्यिक आनन्द का आकलन होता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। एक सचेष्ट द्रष्टा और कलामर्मज्ञ के नाते वे कभी अपनी कविता को उन्नीस और कभी बीस बताकर निर्भय निष्पक्षता का प्रतिपादन करने से नहीं चूकते।"[3]

---

१ **विवेकानन्द—साहित्य, जन्मशती संस्करण।**

२. **क्रांतिकारी कवि निराला—पृष्ट २१७ डॉ० बच्चनसिंह।**

३. **महाकवि निराला अभिनंदन ग्रंथ पृ० ५७ पाण्डेय संस्मरण।**

इस प्रकार निराला के मुख्य प्रेरक स्रोत तो यही हैं किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ गम्भीर प्रभाव अन्य दर्शनों के भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। ये प्रभाव-रूप हैं बौद्ध-दर्शन तथा मार्क्सवादी भौतिक दर्शन। बौद्ध दर्शन का वह परम्परित रूप थोड़ा सा परिवर्तित होकर आया है। कर्म की महत्ता दूसरों के प्रति करुणा और सहानुभूति, लोक सेवा और शून्य या निर्वाण की नवीन व्याख्या निराला ने की है। जिस प्रकार प्रसाद जी ने 'अरी करुणा की शान्त कछार' और बुद्ध के प्रति निवेदित रचनाओं में उनकी पर-दुःख कातरता और लोक-मंगल-भाव को श्रद्धांजलि अर्पित की है उसी प्रकार निराला जी ने बुद्ध के प्रति श्रद्धा अर्पित की है। निराला के चिंतन का गन्तव्य अद्वैत की दशा ही है। अद्वैत की स्थिति का अनुभव करते हुए लोकोपयोगी रूप अर्थात् समानता का आदर्श ही निराला को मान्य है। वे जगत के मिथ्यात्व को नहीं स्वीकार करते। संसार की प्रायः प्रत्येक विचारधारा किसी न किसी रूप में विकासवाद अथवा उदात्तीकरण की प्रक्रिया को मानती आ रही है। चरम नास्तिकता और चरम आस्तिकता दोनों ही विकास के प्रतिफलन की स्थितियां हैं। एक नकारात्मक रूप से जिस शून्य या निर्वाण की स्थिति में पहुंचा देती है तो दूसरी भावात्मक रूप से अद्वैत-स्थिति में पहुंचाती है। बौद्ध-दर्शन का 'शून्य' प्रभाव से नितान्त भिन्न है। "अभाव की कल्पना सापेक्ष कल्पना है। परन्तु शून्य निरपेक्ष परम तत्त्व का सूचक है। यह शून्य ही अपरोक्ष अद्वैत तत्व हैं।"[1] इस प्रकार विवेकानन्द, निराला और बुद्ध के कथ्य में कोई भेद नहीं। शून्य की स्थिति तक आते आते नास्तिकता और आस्तिकता दोनों का अपूर्व संगम हो जाता है। निराला ने इन के समन्वय से ही अद्वैत की पुष्टि की है।

वास्तव में निराला ने विश्व-दर्शन के समन्वय द्वारा मानवतावादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस मानवतावादी दर्शन का आधार सामाजिक उपयोगिता है। भारत सदैव से समन्वय तथा मानवतावाद के पक्ष में रहा है। भारत की वर्तमान स्थितियों से जिनमें मानव-मानव में भेद-बुद्धि कार्य कर रही है, निराला क्षुब्ध और असन्तुष्ट हैं। वे मानव-निर्माण की उदार वृत्तियों का स्मरण कराते हैं जिन के आधार पर भारत विश्व के किसी भी उन्नत समाज का प्रतियोगी बन सकता है। "भारत का वह समाज जहां मनुष्य बनने की रीतियां अब भी रह गई हैं, जो अपने महान विचार तथा उदारता से आज भी संसार को समाज शास्त्र से मुकाबला करने के लिए निस्संकोच निस्त्रास खड़ी हैं।"[2]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रथम भाग सं० राजबली पाण्डे पृ० ४५४

२. हमारा समाज—प्रबन्ध-प्रतिमा—निराला पृ० ३३४

वेदान्ती निराला ने इसी आधार पर सर्वधर्म-समन्वय को उचित माना है। उनका विश्वास है कि सभी धर्म और दर्शन सिद्धान्त रूप से अभिन्न हैं। "कुरान का असल तत्व जो 'लाइलाहा इल्लाल्ला" है, वह 'एकमेवाद्वितीयम्' का अक्षर-अक्षर अनुवाद है।"[1]

इसी प्रकार बौद्ध-दर्शन के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा है। अपनी समन्वयकारिणी दृष्टि से वे अद्वैत और शून्य में कोई भेद नहीं देखते। आस्तिकता और नास्तिकता दर्शन की इस भूमिका में प्रतिष्ठित होकर अभिन्न रूप प्राप्त करती हैं। "चरम आस्तिकता एक ही बात है। शून्य को चाहे कुछ नहीं कह लीजिए या सब कुछ। वह पूर्ण भी है और कुछ भी नहीं। यही नास्तिक और आस्तिकवाद का रहस्य है। यही कपिल, बुद्ध और नास्तिक दर्शन कहते हैं और यही वेदान्त, गीता और पंतजलि आदि आस्तिक दर्शन। यही सबसे ऊंची भूमि है।"[2]

इसी ऊंची भूमि पर पहुंच कर निराला भौतिकवादी दर्शन अर्थात् मार्क्स-वादी दर्शन की चरम सीमा अर्थात् शून्य की प्रतीक्षा करते हैं—"योरप के भौतिक विज्ञानवाद को और एक सीढ़ी चढ़ना है, बस सब फैसला प्रकृति कर देगी।"[3] निराला के मतानुसार प्रकृति स्वयं समभाव रखती अथवा साम्य की स्थापना करती है। "अभिप्राय यह कि प्रकृति ने ही साम्य की स्थापना करदी, सब जातियों के एक ही कार्य तथा एक ही अधिकार कर दिये।"[4]

वास्तव में निराला का व्यक्तित्व ही बहुत उदार है। वे वर्णाश्रम प्रधान सनातन हिन्दू परिवार में जन्म लेने पर भी साम्यवादी सर्वधर्म समता के पक्ष में रहे हैं। कुल्लीभाट में ऐसा उदाहरण है—"निराला एक वृक्ष हों जिसकी जड़ें कान्यकुब्ज बैसवाड़ी हैं, शाखायें विश्व भर की वाताश्लेप करती सर्व दिशोन्मुख।"

निराला के परवर्ती काव्य में साम्यवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। वहां वे अद्वैत और मार्क्सवाद का तो समवन्य नहीं कर सके हैं लेकिन आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय मानवतावादी विचारधारा के आधार पर अवश्य कर सके हैं। कवि का दृष्टिकोण यहां पर सदैव सामाजिक रहा है। इसी

---

१. प्रबन्ध पद्म — पृ० ३१
२. प्रबन्ध पद्म — पृ० ४४
३. प्रबन्ध पद्म — पृ० ४४
४. प्रबन्ध पद्म — पृ० २३७

दृष्टि से निराला ने अद्वैत को देखा है और साम्य को भी । और स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो मैं निद्वन्द्व होकर कह सकता हूं कि निराला ने सदैव प्रत्येक स्थान पर साम्यवादी विचारधारा को उसके साम्यतत्व से भारतीय अद्वैतवाद की परिपुष्टि का साधन माना है । निराला ने यथार्थ को महत्त्व देते हुए भौतिक जगत् के प्रति आकर्षण ग्रहण किया है । भौतिक जगत् हमारे मन पर प्रभाव डालता है —जैसी उसकी प्रतिच्छाया पड़ती है उसी का मूर्त रूप काव्य में ग्रहण किया जाता है । प्रगतिशील निराला जड चेतन दोनों को अद्वैत की पुष्टि करने के लिए समान महत्व देते हैं—"जड और चेतन, सबकी प्रकृति कवि को अपना स्वरूप दिखा देती है । वे दर्पण हैं और प्रकृति का प्रत्येक विषय उन पर पड़ने वाला सच्चा बिम्ब है ।"[1]

इतना ही नहीं निराला जगत को कभी भी मिथ्या नहीं मानते । उनके छन्द के प्रत्येक चरण से यही व्यजना निकलती है । निराला का वेदान्त जगत् के रूप-रस-गन्ध स्पर्श-शब्द की आसक्तियों तथा लौकिक अनुभूतियों को अलौकिक रूप देता है । यही उनके प्रगतिवाद का रूप है । लेकिन जीवन से परे कोई ज्ञान और अनुभूति नहीं है ।[2]

जिस प्रकार साम्यवादी विचारधारा प्रगति का आह्वान करती है निराला ने भी उसको जीवन के प्रांगण में आमंत्रित किया है । लेकिन जहां मार्क्स द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आर्थिक आधार पर विश्लेषण करते हैं वहां निराला जी आध्यात्मिक आधार पर द्वन्द्व अथवा जीवन की सम-विषम परिस्थितियों के संघर्ष द्वारा प्रगति को उपयुक्त मानते हैं । इस प्रकार मृत्यु जीवन को प्रगति की चरम सीमा तक ले जा सकती है । जीवन की प्रगति नश्वरता के कारण ही है । प्राण नित्य नवीन रूप धारण करते हैं । जिस प्रकार मार्क्सवादी दर्शन द्वन्द्व के बाद विकास के रूप में समाज की एक नवीन व्यवस्था स्थापित करना बताता है वैसे ही वेदान्त जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व के पश्चात् जीवन का नवीन रूप बताता है मेघमाला के वर्षण तथा उसके विनाश से पृथ्वी को नवीन जीवन मिलता है, कवि को कादम्बिनी यही संदेश देती है ।[3] निराला जी इसी आधार पर रूढियों का ध्वंस करने को उत्सुक हैं, उनके बहुत से गीतों में प्रगति के इस आह्वान को देखा जा सकता है :

---

१. रवीन्द्र कविता कानन — पृ० ९७

२. 'कौन तम के पार रे कह'—गीतिका — पृ० २४

३. 'मेध के घन केश'—गीतिका — पृ० ५०

जलादे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूंगा तन जीवनहीन ।[1]

युगान्तकारी कवि निराला का व्यक्तित्व साम्यवादी विचारधारा तथा वेदान्त की दार्शनिक प्रतिपत्तियों के समन्वय से ही क्रान्तिकारी रूप धारण कर लेता है। साहित्य-क्षेत्र में भाषा-भाव छन्द इत्यादि सभी में वे प्रगतिशील दिखाई देते हैं। मनुष्य की मुक्ति के समान निराला ने कविता की भी मुक्ति मानी है। "मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धनों से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना।[2] निराला ने सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रों की रूढ़ियों के उच्छेदन के लिए उद्घोष किया है। "हिन्दी में समझ वाला युग अभी नहीं आया। इसलिए नए साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियों से अभी जन-मस्तिष्क पूर्ववत् जकड़ा हुआ है। रूढ़ियों पर बार बार प्रहार द्वारा इसकी श्रृंखला तोड़ देनी है।"[3] इस प्रकार निराला प्रगति के समर्थक हैं।

'कुकुरमुत्ता' तथा "नए पत्ते" में युगानुकूल प्रगति की रूपरेखा है। दोनों में कवि की सहानूभूति निम्नवर्ग के प्रति प्रकट हुई है लेकिन उसका विकास मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अथवा मानव के संघर्ष तक नहीं हो सका है। कवि 'मास्को डॉयलाग्स' में तीखे व्यंग्य के द्वारा समाजवादी नेताओं की पोल खोल देता है। कवि ने मार्क्सवादी दर्शन का अतिरंजित रूप श्रेयस्कर नहीं माना है। उसकी भौतिकवादी दृष्टि पृथ्वी का स्पर्श करके ही अलौकिकता की ओर उन्मुख हो जाती है। मानव की समानता और उसके प्रगतिशील रूप को देखते हुए निराला मानववादी दर्शन के प्रणेता कहे जा सकते हैं। "उनकी करुणा जो दलितों को मनुष्यता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करती है, उनका आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टिकोण, जो समाज के निहित स्वार्थों की असलियत पहचानता है, उनकी संघर्ष का सामना करने की प्रवृत्ति और जीवन में आस्था उन्हें आधुनिक निराशावाद से भिन्न प्रगतिशील मानवता का कवि सिद्ध करते हैं।'[4] इस प्रकार निराला ने इस मानवतावादी दर्शन का प्रतिपादन वेदान्त तथा मर्क्स-दर्शन के समन्वय से ही किया है।

---

१. जलादे जीर्ण शीर्ण प्राचीन —गीतिका पृ० ३९
२. परिमल की भूमिका पृ० १९
३. निराला अभिनन्दन ग्रंथ: बरुआ—श्री निराला जी कलकत्ता में पृ० १४०
४. प्रो० धनञ्जय वर्मा :—निराला काव्य और व्यक्तित्व पृ० २३९
डॉ० रामविलास शर्मा को लिखे गये पत्र दिसम्बर ३०, १९५८ से

कश्मीर की रक्षा के लिए कश्मीरी कवियों का संकल्प

—प्रो० चमनलाल सपरू

१९४७ के अक्तूबर महीने में पाक-निर्देशित कबाइली आक्रमण के समय कश्मीरियों ने अपने स्वतन्त्रता, परम्परा और धर्म निरपेक्ष शासन की मान्यताओं के रक्षा हेतु अपने न्यूनतम साधनों से आततायियों को ललकारा था :

हमलःआवर होशियार हम कश्मीरी हैं तैयार।

१९६५ के अगस्त महीने में पाकिस्तान ने जब तथाकथित 'मुजाहिदों' (घुसपैठियों) को नंदनकानन कश्मीर में हज़ारों की संख्या में यहां के शान्त वातावरण में खलल पैदा करने के लिए भेजा और यह कल्पना की थी कि अब की बार संसार को बतलाया जायेगा कि यह आन्तरिक विद्रोह है, तो कश्मीर घाटी में यह ध्वनि गूंजी।

हमलआवर खबरदार हम हिन्दुस्तानी हैं तैयार।

अब की बार कश्मीर पर हुए आक्रमण को सारे राष्ट्र ने अपने लिए एक चुनौती समझा। जम्मू-कश्मीर का हर एक देश-भक्त नागरिक विभिन्न मोर्चों पर तन गया। और 'लल्लेश्वरी', 'नुंदऋषि', 'परमानन्द' और 'महजूर' की धरती को, अपनी स्वस्थ सांस्कृतिक परम्परा को पाकिस्तानी दरिंदों से सुरक्षित रखने के लिए जाग उठा। यहां का साहित्यकार भी अपनी वाणी से जनता में नया जोश भरकर उसे कर्त्तव्य के पथ पर बढ़ने के लिए अग्रसर करने लगा।

जन्म धरा के प्रहरी।

भारतीय सिपाही को अपूर्व उत्साह के साथ मोर्चों की ओर बढ़ते हुए देख कर—**'अलहाज फाज़िल कश्मीरी'** पुकार उठा—

मैं भारत का सिपाही हूँ, हिमालय का पक्षीराज।
मझे संघर्ष की तड़प है और मेरा अंदाज़ जवाँ है।
मेरा मार्ग आकाश गंगा है और मेरी मंजिल 'सुरैया' है।
मैंने कितने ही 'समरकंद' और 'शीराज़' देखे हैं।
यह आकाश मेरे इरादों में बाधा नहीं बन सकता।
मेरा अभियान ऊपर की ओर है,
मैं इस से हट नहीं सकता हूँ।

वास्तव में आज से कई वर्ष पूर्व कश्मीर के राष्ट्र कवि स्व० गुलाम अहमद 'महजूर' ने स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी आवाज़ मिलाते हुए देश की भिन्न-भिन्न जातियों को एक होने और मिलकर अपने देश को बसाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की—

छि बाग़स जानवार बोलान
मगर आवज़ ब्योन ब्योन छख
यिहिंदिस आलवस या रब
असर यकसान पैदा कर।

'महजूर' को विश्वास था कि मेरे देशवासी जब एक होंगे, तो इससे देश का नाम सारे संसार में चमकेगा। अत: आवश्यकता है कि मेरे देशवासी फिर से एक 'ललितादित्य', 'ताज़ीभट' और 'मुबारक खान' को पैदा करें।

१९४७ से ही कश्मीरी कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा जहाँ भारत के मुकुटमणि कश्मीर को उन्नति की ओर अग्रसर होने में अपनी लेखनी से सहयोग दिया, वहां वे पग-पग पर इस नंदन कानन को जंगबाज़ों की कुटिल चालों का शिकार होने से बचाने के लिए सचेत करते रहे। मखनलाल 'बेकस' ने जंगबाज़ों को खबरदार करते हुए लिखा :

मोक़र इराँद ह्यथ अगर
ग़नीम सरहदन अन्दर
मगर छि सॉन्य शेरि नर
रछान वतनुकुई व्यकार।
जंगबाज खबरदार।

[हम आगे क़दम-क़दम बढ़ते जाते हैं। हमें अपने जवां ग़ैरत की शपथ है, हमारे इरादे ताज़ा दम हैं। हम दुश्मनों को भगाते हैं। जंगबाज़ खबरदार हो

जाओ। कुत्सित विचार लेकर जो हमारी सीमाओं के अन्दर घुस आते हैं, उनको याद रहे कि हमारे नरपुंगव देश के गौरव को सुरक्षित रखने के लिए तैयार हैं।]

युग कवि 'नादिम' की निम्न पंक्तियों में यहां के जनमानस की भावनायें स्पष्ट हो उठी हैं—

> **जो हथियाने की कोशिश करेगा इस मधु भू को।**
> **जो आगे आयेगा, छेड़ेगा इस वीर प्रसू को॥**
> **समझो, दिन उल्टे आये हैं. उस पापी दुश्मन के॥**
>
> **(अनु० मोहन निराश)**

हमारे देशवासी मूलत: शान्तिप्रिय हैं, वह जंग नहीं चाहते हैं। यह **अभिनवगुप्त** और **ग़नी कश्मीरी** की धरती है। हमारे चिरकाल से संजोये स्वप्नों को हमारी रंगीन तमन्नाओं को साकार करने के लिए शान्ति की आवश्यकता है, लेकिन जब सरहदों पर जंगबाजों ने पुकारा है, तो **अमीन कामिल** के शब्दों में--

> **अमन पसन्द सॉन्य लुख**
> **दपान रोजिहे न जंग,**
> **मगर यि कथ ति मा ज़रव**
> **बेशोर कॉह ति हावि हेंग,**
> **शिशुर तिमन ति छा व्यचान**
> **बहार ह्यथ यिहिन्द्य हलम॥**

[हमारे लोग शान्ति प्रिय हैं, वह युद्ध नहीं चाहते हैं। लेकिन वे यह भी कैसे सहें कि कोई घमण्ड दिखाये। जिनके दामन बहारों से लदे हों, उनको क्या जाड़ा कभी भाता है?..... हमें दु:खों ने नहीं रोका है और न हम बिजलियों से डरे हैं। यह बात उन बहादुरों से पूछो, जो हमारी सीमाओं पर फूल बनकर खिल उठे हैं। विजय हमारी दासी रह चुकी है और दु:ख हमारे नीचे दबे हैं।]

कश्मीर के लोगों ने स्वतन्त्र भारत के नागरिकों के रूप में अपने देश के नवनिर्माण का दृढ़ संकल्प किया है और साथ ही युग-युगों से चले आते भाई चारे को सुरक्षित रखने का निश्चय किया है। वह अपने गुलशन को आबाद देखना चाहते हैं। कश्मीर का किसान लहलहाते खेतों को वीरान देखना नहीं चाहता। यहाँ का निवासी निशात और शालीमार को आग के शोलों में लिपटा

हुआ नहीं देखना चाहता । वह प्रेम और भ्रातृ-भाव की वेदी पर हर एक चीज क़ुर्बान करने के लिए तैयार है ।

वर्तमान समय सारे भारत के लिए और विशेषकर कश्मीर के लिए परीक्षा की घड़ी है । एक ओर से पाकिस्तान ने हम पर आक्रमण करके, हमारे आदर्शों को चुनौती दी है और इसी प्रकार दूसरी ओर चीन भी हमारी प्रगति में बाधा बनना चाहता है । कश्मीर निवासी कठिनाइयों से जूझते हुए आगे बढ़ने का आदी है । उसको पूरा विश्वास है कि अन्तिम विजय हमारी होगी । यह है केन्द्रीय भाव **अमीन कामिल** की कविता का । इस कविता की कुछ **पंक्तियां** प्रस्तुत हैं :

सब ओर से लोग जागे हैं ।
कश्मीरियों का खून उबला,
मराठों में जोश आया
हिमालय के जवान जागे
आसाम के प्रहरी उठे हैं ।
बंगाली उठे हैं
और पंजाबी तेग़ लिये हुए हैं ।

पुकारता है मुकद्दस वतन बहारों का

हमारे कर्णधारों ने वर्तमान संघर्ष के बारे में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यह युद्ध दो विचार धाराओं का युद्ध है । अतः हमारे सुरक्षा-सैनिक हमारी परम्पराओं के रक्षक हैं । **अलहाज फाज़िल कश्मीरी** के शब्दों में :

हम अपने स्मारकों के रक्षक हैं ।
मन्दिरों के शंखनादों, गिरजों के आध्यात्मिक संगीत,
गुरुद्वारों के नाम स्मरण की ध्वनि,
खानकाहों के अलौकिक नाद
और सही दीन, पूजा और निमाज़ के तरीकों के
हम रक्षक हैं ।

कश्मीरी कवियों के अतिरिक्त यहां के अन्य भाषा भाषी कवियों ने भी जनता को सचेत किया है, चीनी और पाकिस्तानी आक्रमणों से । हम अपने देश की पवित्रता को कदापि आततायियों के द्वारा दूषित नहीं होने देंगे । **कैसर कलंदार** की उर्दू कविता के कुछ पद :

पुकारता है मुक़द्दस वतन बहारों का
शिगुफ्तगी से महकते हुए निगारों का ।
हयात खे़ज औ' गुल अफ़रोज मरगुज़ारों का
अजन्ता, ताज, एलोरा के ख़्वाबज़ारों का ॥

पाकिस्तान और चीन के नापाक गठजोड़ से जागरूक कश्मीरी अब कभी उस पथ से विचलित नहीं होगा, जिसको उसने १९४७ में अपनाया था और जिसका महात्मा गान्धी और पं० नेहरू ने मार्ग-दर्शन किया था ।

कश्मीरी कहावतें और पहेलियां

शिबनकृष्ण रैणा

कहावतों और पहेलियों में किसी भी जन-पद के 'जनमानस' की सहज-सुलभ प्रवृतियों का सूक्ष्म अंकन मिलता है। कहावत एक ऐसी लोकप्रिय तथा सटीक उक्ति है जिसके द्वारा मानव-जीवन के अनुभव सार-रूप में मार्मिक ढंग से व्यंजित होते हैं। इन मर्मवाक्यों की उत्पत्ति प्राय: बैठकघरों, समाजों अथवा पुस्तकालयों में न होकर खेत-खलिहान में होती है। ये ऐसे सप्राण तथा चुभते हुए जीवन के सूत्र हैं जो जनता की जिह्वा पर निवास करते हैं तथा मानव-जीवन के मूल्यों की सम्यक् आलोचना प्रस्तुत करते हैं। वे सभी घटनायें जो मनुष्य के हृदय को आलोड़ित कर उसके स्मृति-पट पर स्थायी रूप से अंकित हो जाती है, कालांतर में उसकी प्रखर बुद्धि के अवशेषों के रूप में कहावतें बन जाती हैं। कहावतें जन-जीवन की संपत्ति हैं जिसको जन-साधारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रयोग में लाती रही है। कहावतों में समाज-विशेष के रीति-रिवाजों, धार्मिक, नैतिक तथा अन्य व्यावहारिक मान्यताओं का सजीव एवं स्वाभाविक विवेचन मिलता है। कहावतें साधारण-जनता के लिए पथ-प्रदर्शक तथा नैतिक संबल के रूप में कार्य करती हैं। दैनिक सम्भाषण में किसी व्यवहार के समाधान अथवा खण्डन के लिए इनका प्रयोग समय-समय पर किया जाता है। कहावतों की भान्ति पहेलियां भी जन-जीवन की सजीव और सहज अभिव्यक्तियां हैं। जन-जीवन के मनोरंजन के विविध साधनों में पहेलियों का विशिष्ट स्थान है। इनका सम्बन्ध प्रतिदिन के व्यवहार में रहने वाली अनुभवगम्य वस्तुओं अथवा क्रियाओं से रहता है। कहावतों की ही भांति पहेलियों में भी वर्षों का अनुभव और विश्लेषण गुम्फित रहता है। पहेलियों को बूझने अथवा बुझाने से बुद्धि का विकास होता है। वास्तव में, पहेली एक प्रकार का शब्द-चित्र है। इसके पढ़ते

अथवा सुनते ही आंखों के सामने एक विम्ब-सा उपस्थित हो जाता है तथा पहेली में कही गई उस समस्या का समाधान बुद्धि-कौशल द्वारा ढूंढना पड़ता है।

कश्मीरी भाषा में अन्य भाषाओं की भान्ति कहावतों और पहेलियों का विशाल भण्डार है। इन में इस प्रदेश के जन-जीवन की सरल और स्वाभाविक विवेचना मिलती है। जन-मान का सूक्ष्म और तीव्र उद्‌बोधन यहां की इन कहावतों और पहेलियों में मुखर हो उठा है।

सर्वप्रथम कश्मीरी कहावतों में विचित्र मानव-स्वभाव की विभिन्न प्रवृत्तियों को देखिए। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक "मैकड्‌गल" ने मानव-स्वभाव का निर्माण करने में जिन १४ मूल वृत्तियों को गिनाया है उन में से प्राय: प्रत्येक की सूक्ष्म अभिव्यंजना कश्मीरी कहावतों में दृष्टिगत होती है। यहां पर हम केवल प्रमुख मूलवृतियों का विवेचन करते हैं।

पलायन (भय)

भयभीत व्यक्ति द्वारा वस्तु-स्थिति का उचित विश्लेषण करने के अभाव में भय अपना प्रभाव अधिक दिखाता है। एक दिन पाठशाला के विद्यार्थियों को पढ़ने से छुटकारा पाने के लिए एक चाल सूझी। एक विद्यार्थी ने अध्यापक के पास जाकर कहा—आप आज अस्वस्थ लग रहे हैं, चेहरे पर पीलापन-सा छाया हुआ है। दूसरे विद्यार्थी ने भी आकर यही शब्द कहे। इसी प्रकार कई विद्यार्थियों के कहने पर अध्यापक महोदय सचमुच पीले पड़ गए। रोग के भय से वे अवकाश लेकर घर चले आये और विद्यार्थीगण प्रसन्नता से उछलने लगे। इस लघु-कथा का आधार लेकर एक कहावत रूढ़ हो गई **"ओखुन सअबन्य जर्दी"** अर्थात् मकतब (पाठशाला) के अध्यापक का पीलापन। यद्यपि अध्यापक महोदय पूर्णतया स्वस्थ थे किन्तु उन पर रोग के भय ने मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला और वे अपने को सचमुच रोगी समझ बैठे। इसी प्रकार भय से सम्बन्धित एक और कहावत है—**"मौकदमस नय फौकअदम आसि, गामस तुलि शामस तान्य"** अर्थात् यदि मुखिया के पीछे कारिन्दा न हो तो शाम तक सारे गाँव में हाहाकार मच जायेगा। दुष्ट एवं कुटिल व्यक्तियों पर यदि भय का अंकुश न रखा जाए तो वे निश्चय ही उच्छृंखल होकर लोगों के लिए संकटकारी सिद्ध होंगे तथा उनके सहज-जीवन में बाधा डालेंगे। गांव का सर्वाधिकारी **'मौकदम'** (मुखिया) कहलाता है। इसके पीछे **फाकदम** (करिन्दा) लगा रहता है उसकी प्रत्येक हरकत पर कड़ी नज़र रखता है। यदि मुखिया को पूरी स्वतन्त्रता दी जाये तो वह सारे गांव पर घोर अत्याचार करेगा।

युयुत्सा (क्रोध)

मनुष्य का जब अपने से बलवान पर वश नहीं चलता तो वह अपना क्रोध निर्बल पर उतारता है। क्रोध की तीव्रता में उसे उचित-अनुचित का विवेक नहीं रहता है। एक कहावत है— **"गुर्य न पोशान तअ ल्यज़ फल्यन चोब"** अर्थात् घोड़ों पर वश नहीं चलता और लीद को पीटता है। मूल-कारण का उच्छेदन हो जाने पर व्यक्ति का क्रोध भी शान्त हो जाता है। एक बार पति-पत्नी में झगड़ा हो रहा था। पति मांस खरीद लाया था और पत्नी उसे लौटाने के लिए कह रही थी क्योंकि मास ठीक नहीं था। दोनों में झगड़ा बढ़ता गया। इसी बीच एक बिल्ली ऊपर से आ झपटी और मांस की पोटली को उठा कर ले भागी। दोनों पति-पत्नी शान्त हो गए। इस लघु-कथा का आधार लेकर एक कहावत प्रचलित हो गई **"ब्रा'अर्य खेयि सिन्य दज चे ति मे हर बअज"** अर्थात् बिल्ली ने मांस की पोटली उड़ा ली और तेरा मेरा झगड़ा मिट गया।

पुत्र-कामना (वात्सल्य)

माता-पिता का अपनी संतान से प्रेम स्वाभाविक है। सन्तान के अभाव में उनको अपना जीवन सूना-सूना तथा निराधार लगता है। इस सम्बन्ध में दो कहावतें हैं—

१. **"माल फितनअ या औलाद फितनअ"** अर्थात् इस संसार में या तो धन के लिए व्यक्ति तरसता है या औलाद के लिए।

२. **"हां'ठ क्याह ज़ानि पौत्रय दग"** अर्थात् बांझ क्या जाने पुत्र वियोग।

आत्मगौरव (स्वाभिमान, मिथ्या-प्रदर्शन)

आत्म-सम्मान को बनाये रखना या उसे खो देना, मनुष्य के अपने हाथ में है। इसका सीधा सम्बन्ध व्यक्ति-विशेष के अधिकारों से न होकर उसके कर्मों से होता है। दो कहावतें हैं:—

१. **"पनुन यज्ज़त पानस अथि"** अर्थात् अपनी इज्जत अपने हाथ में होती है।

२, **"येम्य रोछ मान तम्य रोछ पान"** अर्थात् जिसने स्वाभिमान की रक्षा की उसने अपनी आप की रक्षा की।

मिथ्या प्रदर्शन के अन्तर्गत मनुष्य बड़े से बड़े कष्टों और विडम्बनाओं का वहन करने के लिए तत्पर रहता है। ऐसे स्वभाव के व्यक्ति क्षणिक-काल्पनिक बड़प्पन के लिए अपने आत्म-सम्मान तक को भी बेच देते हैं और मिथ्या आत्म

सन्तोष द्वारा अपनी तुष्टि करते हैं। एक कहावत है—"**ख्वाजअ सा'व गाम हज़ नीव, दोपस असि त्रा'व्य पानय**" अर्थात् हे ख्वाजा साहब, आप के गांव छीने गए, उत्तर मिला—हम ने तो वे स्वयं छोड़ दिए हैं।

संग्रह-वृत्ति (लोभ, स्वार्थ)

लोभी की इच्छाओं का अन्त नहीं होता। उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। जैसे मरुभूमि में मृग को दूर स्थल दरिया दिखाई पड़ते हैं किन्तु पास आने पर उसे कुछ नहीं मिलता और वह आगे दौड़ता जाता है। ठीक इसी प्रकार तृष्णा की वृति भी सूखी नदिया के समान अतृप्त रहती है और मनुष्य को नष्ट-प्राय कर देती है। दो कहावतें हैं—

१. "**खाम तमाह त होछि मजअ कोल**" अर्थात् लोभ (तृष्णा) सूखी नदिया के समान है।

२. "**तमाह गव समाह**" अर्थात् लोभ संहार करता है।

स्वार्थीजन अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने तक दाता से खूब घुले मिले रहते हैं किन्तु बाद में किनारा कर जाते हैं। निकटस्थ सम्बन्ध एवं पूर्वपरिचय को भूल कर ये कृतघ्न व्यक्ति ऐसा आवरण करते हैं जैसे पहले किसी को जानते ही न हों। एक स्वार्थी अनेक वर्षों तक किसी के आश्रय में पलता रहा। एक दिन अपने स्वभाववश दाता की उदारता का फल यों चुकाया—"**बंन बडयोस चानि, गरअ ज़निय नअ वृथ**" अर्थात् मैं भले ही तुम्हारे अन्न से पला हूं किन्तु अभी तक तुम्हारे घर का रास्ता (तक) मुझे मालूम नहीं।

भोजन की खोज (क्षुधा)

भोजन के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। यह इसके जीवन का नितान्त आवश्यक अंग है। अत: भोजन प्राप्ति के लिए वह भरसक प्रयत्न करता है। इस प्रसंग में दो कहावतें हैं—

१. "**नफअच छु दिवनावान सन्**" अर्थात् मनुष्य पेट के लिए चोरी भी करता है।

२. "**नफचक्य सांग**" अर्थात् पेट के लिए मनुष्य ये सब स्वांग रचता है।

कश्मीरी कहावतों में मानव-स्वभाव की मूल-भूत प्रवृत्तियों पर विचार करने के पश्चात् अब सामाजिक कहावतों को देखिए। इन कहावतों में समाज की प्रत्येक दशा एवं अंग का सजीव चित्रण मिलता है।

सवप्रथम गृहस्थ को लीजिए। गृहस्थ एक ऐसा निकाय है जिस में प्रत्येक सदस्य का व्यक्तिगत सहयोग अपेक्षित है। इसके अभाव में गृहस्थ का बिगड़ना निश्चित है—

१. **'गरअ गव चकि नाव, दकअ दी दी पकअ नाव** अर्थात् घर एक नाव है जिसे धक्के दे दे कर चलाना पड़ता है।

२. **'शरिकतच लेज छि खेमच् होन्यव'** अर्थात् सम्मिलित परिवार की रसोई कुत्ते ने खाई है। सम्मिलित परिवार में कोई भी सदस्य अपनी ज़िम्मे-वारी महसूस नहीं करता। गृहस्थ के विभिन्न सदस्यों को लीजिए। पति का गृहस्थ में विशिष्ट स्थान है। "गृहस्थ के बनने या बिगड़ने का उत्तरदायित्व उसी पर रहता है। कहावत है—'खानदार गव थानदार" अर्थात् गृह-स्वामी थानेदार के सम्मान होता है। पत्नी को घर की आधार शिला समझा गया है। गृहस्थ की आंतरिक सुदृढ़ता उसी पर अवलम्बित है—"नौश गयि ब्रादंय कअन्यै", "कूर गयि लूकअहोदँ माल" अर्थात् वधु आधार-शिला है और पुत्री अन्य की अमानत। सास, ननद और वधू के परस्पर कटु व्यवहार पर अनेक कहावतें हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. **'नौशि दिचम फुहर, हशि दिम बुड़िध"** अर्थात् सास ने मुझे (वधू को) पपड़ी खिलाई, मैं उसे बुढ़ापे में खिलाऊंगी।

२. **"नौंश बनिन कूर तअ हश बनिन मअज"** अर्थात् वधू कभी पुत्री नहीं बन सकती और सास कभी माता नहीं बन सकती।

३. **"जाम अय आसि गाम तति प्यठ सोजि पाम"** अर्थात् ननद अगर दूर गांव में भी हो तो वहीं से तानें भेजेगी।

समाज के दूसरे प्रमुख अंग 'जाति-व्यवसाय' को लीजिए। जाति व्यवसाय में ब्राह्मण और पंसारी (बनिये) का विशेष स्थान है। इन पर अनेक कहावतें प्रचलित है। उदाहरणार्थ—

१. **"गोर दिवान वछस-वछस, काम्बर्य पछस क्याऽसन गव"** अर्थात् ब्राह्मण छाती पीट रहा है कि श्राद्ध-पक्ष क्यों जल्दी समाप्त हो गया।

२. **"बिहिथ वोन्य पोन्य तोलि"** अर्थात् पंसारी बेकार नहीं बैठता, तो भी वह पानी ही तोलेगा।

३. **"वोन्य गव केसरि तल्य पोन्य"** अर्थात् पंसारी एक ही घाघ है,

४. **"वा'निस छि खरीदार व्येद्य"** अर्थात् पंसारी अपने ग्राहकों को खूब पहचानता है।

कहावतों में जीवन के अनुभवों एवं सत्य का निष्कर्ष संचित रहता है। उन में शिक्षा है, ज्ञान है और उपदेश है। कश्मीरी की कुछ शिक्षा-उपदेश सम्बन्धी कहावतें प्रस्तुत हैं:

१. **"योतामनअ इन्सान-रंज तुलि तोतान्य लवि न स्वख"** अर्थात् जब तक मनुष्य दु ख न झेले तब तक उसे सुख की वास्तविक अनुभूति नहीं होती।

२. **"जमात गयि करामात"** अर्थात् जमात में करामात है, संघ में शक्ति है।

३. **"दुश्मन अय आसि तसुदं ति गछि बोज़ुन"** अर्थात् दुश्मन की भी अच्छी बात सुन लेनी चाहिए।

४. **"पोज़ुय छु पज़ान"** अर्थात् सत्य ही कालांतर में विजयी होता है।

५. **"नेको नीकी कर बद लव पानय"** अर्थात् हे नेक पुरुष ! तुम भलाई करते रहो, बुरा स्वयं एक दिन पकड़ा जायगा।

६. **"खजमत गयि अजमत"** अर्थात् सेवा महान धर्म है।

७. **"हरकत कर तअ बर्कत करी"** अर्थात् उद्योग करने से फल मिलता है।

८. **"वाव बुछिथ नाव त्रावन्य"** अर्थात् वायु देख कर नाव छोड़नी चाहिए।

कहावतों में जनजीवन की सूक्ष्म प्रवृति का सजीव अंकन रहता है। अतः उन में अन्य प्रवृत्तियों के साथ साथ दर्शन का पुट भी दृष्टिगोचर होता है। उनपर दर्शन की यह छाप सहज रूप में उपलब्ध होती है। किसी भी प्रकार की सचेष्ट बौद्धिकता उन में नहीं पाई जाती। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. **"नट्य फुटन तअ चार चार बल रोज़न अत्य"** अर्थात् घड़े (जीव) टूट जायेंगे किन्तु घाट (संसार) वैसे का वैसा रहेगा।

२. **"काल कु न नीरान प्रान प्रिछ्य-प्रिछ्य"** मृत्यु समय पूछ कर नहीं आती है।

३. **"यि गव लीखिथ ति गव होखिथ"** अर्थात् भाग्य की रेखायें एक बार लिखी जाने पर मिटती नहीं।

४. **''अयाल बारन तार रूज़ी''** अर्थात् भगवान किसी को भूखा नहीं मारते ।

५. **''युथ ववख त्युथ लोनख''** अर्थात् मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार फल मिलता है।

कहावतों की ही भान्ति कश्मीरी पहेलियों में जन-मानस का सहज एवं बिम्बात्मक उद्‌भाव निहित है । इन पहेलियों द्वारा इस प्रदेश के बौद्धिक स्तर एवं सामान्य ज्ञान का परिचय मिलता है । कुछ पहेलियां प्रस्तुत हैं ।

१. **''यान्य जाव तान्य खोत कअनी प्यठ''** अर्थात् पैदा होते ही ऊंची मन्ज़िल पर चढ़ गया । (उत्तर–धूंआ)

२. **''मूर्मोच्य हस्तिनि जिन्द अन्द्रम''** अर्थात् मरी हथिनी की ज़िन्दा आंतें । (उत्तर–मकान, जिस में लोग रहते हैं)

३. **''अकिस मशीदि ज़ह दरवाज़ह, आव राजअ वोटअन्य ज़ि पौठन्य''** अर्थात् एक मस्जिद के दो द्वार हैं । उसके अन्दर राजा है । वह आव देखता है न ताव, झट बाहिर निकलता है । (उत्तर–छींक)

४. **''मारस मारि, तारस तारि, यारस ख्यावि ठयतय टग''** अर्थात् वह पीटता है नदी को पार करने में सहायता देता है और मित्र को सेब और नाशपाती खिलाने में सहायक होता है । (उत्तर–सोटा)

५. **''तलिय तल्यी तालब खनान, पादशाह गरस लूट करान''** अर्थात् भीतर से ही छत को कुरेदकर राजा के घर में लूट करता है । (उत्तर—चूहा)

डोगरी भाषा

श्यामलाल शर्मा

हिमाच्छादित हिमालय के दामन में कश्मीर घाटी के दक्षिण-वर्ती प्रदेश जम्मू, भद्रवाह, किश्तवाड़, चम्बा, कुमाऊँ, गढ़वाल तथा नेपाल की सीमा तक फैले विस्तृत आञ्चल में जिसकी दक्षिणवर्ती सीमा में पञ्जाब के होश्यारपुर, गुरदासपुर और जालन्धर के ज़िले आते हैं ऐसा क्षेत्र है, जहां की प्रचलित भाषाओं में बड़ी सदृशताएं तथा विषमताएं पाई जाती हैं, और वे इस बात की द्योतक हैं, कि इन प्रदेशों में कभी एक बड़ी सशक्त और गठीली भाषा बोली जाती थी। वर्तमान डोगरी, पञ्जाबी, कश्मीरी, मुल्तानी, काँगड़ी, चम्याली, कण्डयाली और कुछ सीमा तक गुजराती उसी भाषा की छाप लिये हुए हैं।

चौदहवीं शताब्दी (१३१७ ई०) में अमीर खुसरो ने भारत की भाषाओं की गणना करते हुए उपर्युक्त प्रदेशों में डोगरी भाषा का नाम लिखा है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (१८१६ ई०) अंग्रेज पादरी विलियम केरी ने भारत की भाषाओं की गणना करते हुए बंगाली, हिन्दी और कश्मीरी के साथ डोगुरा का नाम लिखा है।

डुग्गर शब्द :—डुग्गर शब्द के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं। एक समय था जब उपर्युक्त सारे प्रदेश में डोगरी भाषा की प्रमुखता के कारण ही इस सारे प्रदेश को डुग्गर कहा जाता था।

एक प्रमुख धारणा यह है कि डुग्गर द्विगर्त का विकृत रूप है। इसी आधार पर मानसर और सरूईंसर की विशाल झीलों को दो गर्त मानकर इनके आसपास के प्रदेश को द्विगर्त की संज्ञा दे दी गई। परन्तु भाषा-विज्ञान और उच्चारण की दृष्टि से द्विगर्त का विकार डुग्गर नहीं "दुगत्त" होना चाहिए।

दूसरी धारणा यह है कि डुग्गर शब्द डूंगर शब्द का विकार है। डूंगर राजस्थान में पहाड़ी टीले को कहते हैं। राजस्थानी में एक कहावत है —

"लेखारा की लोढ़ी डूंगर जाय पोढ़ी।"

(' लाख की चिड़ियां बनाने वाले की स्त्री ऊँचे टीले पर जा चढ़ी है" व्यंग्यात्मक है) ऐसा माना जाता है कि मुसलमानों के आक्रमणों के कारण कुछ राजपूत परिवारों ने राजस्थान को छोड़ कर कांगड़ा, चम्बा, और जम्मू में निवास किया और डूंगर की सदृशता के कारण इस पर्वतीय प्रदेश को डुग्गर नाम दे दिया।

वर्तमान डोगरी भाषा तथा राजस्थानी भाषा की समानता में वेषभूषा चित्रकला, लोकगीत, तथा रहन-सहन के ढंग से इस तथ्य की पुष्टि होती है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा कोई समय नहीं मिलता जब राजस्थान से ऐसे सामूहिक निष्कासन का पता चलता हो। यह बात इतनी जंचती भी नहीं, कि राजस्थान से चल कर दिल्ली और पञ्जाब में न ठहर कर वे लोग यहां के पर्वतीय प्रदेश में आये। अत: केवल डूंगर के आधार पर इस प्रदेश को डुग्गर मान लेना ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में इतना जंचता नहीं। ग्यारहवीं शताब्दी का एक ताम्रपट्ट उपलब्ध हुआ है, जिसमें डुग्गर नाम आता है। प्रो० कीलहार्न का मत है, कि डुग्गर शब्द दुर्गर शब्द से बना है। प्रदेश की विषम पर्वतीय स्थिति तथा दार्वाभिसार के दुर्गम वनों के वर्णन से दुर्गर तथा डुग्गर शब्द की सार्थकता प्रकट होती है।

डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर वैदिक रिसर्च स्कालर का मत है, कि द्विगर्त शब्द में गर्त का अर्थ केवल गढ़ा (डोगरी-गत्त) नहीं। गर्त का अर्थ सिंहासन, उच्चस्थान शिखिर भी होता है। तो द्विगर्त का अर्थ हुआ दो शिखिरों वाला, और भाषा विज्ञान की दृष्टि से—

द्विगर्त, दुगट्ट, दुगड, दुगल, डुगर की परिणति सम्भव है।

डॉ० वेद कुमारी संस्कृत विभाग, जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय, के लेख "प्राचीन संस्कृत साहित्य में डुग्गर" के अनुसार महाभारत के वनपर्व में दुर्गाल शब्द आया है। यह डुग्गर हो सकता है, परन्तु महाभारत में दुर्गाल की भौगोलिक स्थिति का निर्णय नहीं है। वैदिक परम्परा में प्रगाथ काण्व का पुत्र दुर्गह, उसका पुत्र गिरिक्षित, उसका पुत्र पुरकुत्स तथा उसका पुत्र त्रसदस्यु हुआ। वह द्रुह्यु पंजाब से भाग कर इस प्रदेश में आ बसा, तो प्रस्तर तथा कण्टकाकीर्ण दुर्गह प्रदेश—दुर्गह, दुर्घट, दुर्गड, दुर्गल तथा डुग्गर बन गया। जिस का वर्णन

दुर्गाल के नाम से महाभारत में आया है। पुराणों में वर्णित दार्वाभिसार प्रदेश आज का राजौरी पुन्छ ज़िला है, जो डुग्गर प्रदेश जम्मू का अंग है। इस प्रदेश का वर्णन ऐसे किया गया है—

जंगलों और झाड़ियों से घनीभूत यह ऐसा प्रदेश है, कि संचार सम्भव नहीं है। लोग बड़े कठिन वृत्ति के तथा दृढ़ हैं। लोगों को लूट लेते हैं।" प्रदेश के इसी भाग "देवा" 'बटाला" के चिब्ब लोग इसी वृत्ति के विख्यात या कुख्यात रहे हैं।

ड़ग्गर के नामकरण में दुर्गह तथा दुर्गर से विकृति अधिक वज़नदार मालूम होती है।

डोगरी भाषा:—भाषा विज्ञान के कई पण्डित डोगरी को पंजाबी की उप-भाषा कहते हैं और कई विद्वानों की दृष्टि में यह एक स्वतन्त्र भाषा है। साधारण तया भौगोलिक दृष्टि से डोगरी का सीधा सम्बन्ध पंजाबी के साथ आता है। पंजाबी भाषा शौरसेनी से निकली, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी तथा गुजराती आदि भाषाओं से सम्बन्ध रखती हैं, इसी प्रकार भाषा-विज्ञान की दृष्टि से डोगरी हिन्दी की छोटी बहन प्रतीत होती है।

हिन्दी भारत के मध्यवर्ती भाग में खड़ी बोली ब्रज, राजस्थानी और अवधी आदि विभाषाओं से शक्ति ग्रहण कर, रही है। पंजाब में हरियाणवी, कांगड़ी, कूल्लूवी, शिमला पहाड़ी आदि इसकी सहायक हैं। चम्बा तथा जम्मू के प्रदेशों में डोगरी इसे समर्थ बना रही है। डोगरी का प्रमुख क्षेत्र पूर्व में रावी नदी से लेकर पश्चिम में चनाब तक का है। चनाब से आगे अखनूर, कालीधार से लेकर और ज्योड़ियां क्षेत्र तक डोगरी बोली जाती है, रामनगर, उधमपुर तथा रियासी के इलाकों में डोगरी का ठेठ रूप मिलता है। जम्मू, साम्बा, हीरानगर और कठूआ में भी डोगरी प्रधान है। उधमपुर से उत्तर की ओर रामबनी, भद्रवाही और किश्तवाड़ी, डोगरी के रूप हैं परन्तु कश्मीरी और पश्चिम पहाड़ी से प्रभावित हैं। खशाली, गोजरी और पहाड़ी जम्मू प्रान्त की ही बोलियां हैं और डोगरी से सम्बन्ध रखती हैं। पोठोहारी का कुछ रूप राजोरी पुन्छ के इलाके में मिलता है, परन्तु इसका सम्बन्ध लैहन्दी से है। इसी प्रकार कण्डियाली, कांगड़ी और भटियाली डोगरी भाषा के ही रूप हैं। कण्डियाली गुरदासपुर ज़िले के उत्तर पूर्व में बोली जाती है। काँगड़ी, कांगड़ा जिले की बोली है। और भटियाली पश्चिमी चम्बा में बोली जाती है।

डोगरी लिपि :—डोगरी भाषा की अपनी लिपि भी है जिसे टक्करी या टाकरी कहते हैं। साहूकार आज भी अपने बहीखाते टाकरी में लिखते हैं। महाराजा रणवीरसिंह जी ने टाकरी को देवनागरी और गुरुमुखी के समतल पर लाया और सरकारी लिपि बनाया। इन वर्णों को ''नये डोगरे' कहा जाने लगा।

इस टाकरी लिपि में 'ऋ' और 'लृ' को छोड़ कर देवनागरी के सारे वर्ण मौजूद हैं। जम्मू-कश्मीर सरकार और डोगरी की उन्नति से सम्बन्ध रखने वाली सब संस्थाओं ने अब देवनागरी लिपि को डोगरी भाषा के लिये अपना लिया है, और इस प्रकार देश की एकता में दृढ़ता का अनुकरणीय प्रयत्न किया है।

डोगरी की कुछ विशेषतायें—(१) डोगरी भाषा की एक विशेषता यह है कि 'छ' ध्वनि के लिए 'श' का प्रयोग होता है।

जैसे—

छज्ज—शज्ज
छतरी—शतरी
छुहारा—शुहारा
छुट्टी—शुट्टी
छत्र—शत्तर इत्यादि

कुछ एक विद्वानों का मत है कि ऐसा वातावरण केवल रामनगर, उधमपुर और रियासी के इलाकों में पाया जाता है। पंजाबी से प्रभावित इलाकों में ''छ'' भी प्रचुर मात्रा में मिलेगा।

(२) 'य' को 'ज' और 'व' को 'ब' उच्चारण करने का वातावरण तो डोगरी मे आम मिलेगा।

यशोदा—जसोदा
यमुना—जमुना
यह—जह
यश—जस

अंग्रेज़ी शब्दों you को जू, younger को जंगर, yes को जैस का प्राय: प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार ''व'' के स्थान पर ''ब'' का प्रयोग भी आम हैं।

वामन—बामना
वस्तु—बस्तु

वाणी—बाणी

वाष्णा— बाशना

वसुमती—बसुमती

पद्मभूषण डॉ॰ सिद्धेश्वर वर्मा जी ने साम्बा के एक विद्यार्थी से बातचीत में "we work when we like को वी वरक बैन वी लाइक" उच्चारण करते सुन इस तथ्य की पुष्टि को है।

(३) डोगरी की प्रमुख विशेषता उसका कर्म-वाच्य प्रयोग बाहुल्य है। जैसे—

हिन्दी—क्या खा रहे हैं ? डोगरी—के खलोआ दा ऐ। (क्या खाया जा रहा है ?)

हिन्दी—क्या पी रहे हैं ? डोगरी—के पलोआ दा ऐ ? (क्या पिया जा रहा है ?)

हिन्दी—क्या लिख रहे हैं ? डोगरी—के लखोया दा ऐ ? (क्या लिखा जा रहा है ?)

हिन्दी—क्या पढ़ रहे हैं ? डोगरी—के पढ़ोआ दा ऐ ? (क्या पढ़ा जा रहा है ?)

हिन्दी—बून्दा बान्दी हो रही है। डोगरी-कनोआ दा ऐ।

हिन्दी—मैं नहीं सुन पा रहा। डोगरी- में नि सुनचोन्दा इत्यादि इत्यादि।

४. शब्द संकोच डोगरी का एक और विशेष गुण है। कई वाक्यों और शब्दों का संकोच भाषा को बड़ा कोमल, सरल और मधुर बनाता है। जैसे—

१. संस्कृत—अहं आगमिष्यामि
   हिन्दी—मैं आऊंगा
   डोगरी—औं औङ
२. हिन्दी—आ गया, डोगरी—आइया।
३. डोगरी—खाई छोड़ेया, खौड़ेया।
४. उधमपुर, ऊँपुर।

५. डोगरी भाषा की एक और विचित्रता यह है, कि इसमें "ह" ध्वनि केवल चुनें तीन चार शब्दों जैसे—हा,=था, हे=थे, हहा=शोक सूचक शब्द, हो हो, हुड़ी हुड़ी मवेशियों को हांकने के समय, या भैंस को हांकने के समय, प्रयुक्त होती है। बाकी शब्दों में (ह) एक tone अर्थात् सुर बन जाता है। यह

ध्वनि महाप्राण "ह" नहीं होती और न ही कण्ठ्य 'अ' होती है। दोनों ध्वनियों के बीच की चढ़ती सी सुर होती है। जैसे—

हिन्दी—हाथ डोगरी—अत्थ

हिन्दी—हार, डोगरी—आर

हिन्दी—हौसला, डोगरी—औसला

हिन्दी—महीना, डोगरी—मीना

हिन्दी—बहार, डोगरी—बार, इत्यादि।

६. डोगरी में अन्तिम व्यञ्जन प्राय: जुड़े हुए मिलते हैं। जैसे—

संस्कृत—चरण, डोगरी—चर्ण

संस्कृत—भारत, डोगरी—भार्त

हिन्दी—चलन डोगरी—चल्न

हिन्दी—गरज डोगरी—गर्ज

हिन्दी—सड़क डोगरी—शिड़्क

७. हिन्दी के कई अनुनासिक शब्द डोगरी में अनुस्वार रहित बोले जाते हैं। जैसे—

हिन्दी—ऊँट, डोगरी—ऊट

हिन्दी—ईंट डोगरी—इट्ट

हिन्दी—पूँछ, डोगरी—पूछल

हिन्दी—कांच, डोगरी—कच्च

हिन्दी—फूंकना डोगरी—फूकना

८. भारतीय भाषाओं में tone सुरों की खूब बहार है। डोगरी में यह वातावरण प्रचुर मात्रा में मिलता है। ऊँची ढलती (high falling) और नीची चढ़ती (low rising) सुरें एक समान शब्दों के अर्थ ही बदल देती हैं। जैसे—

माल—मवेशी

माल—चरखे की माल

माल—मुश्किल या मुहाल

डोगरी—कोदा माल चरा दा ऐ?

(किस के पशु चर रहे हैं?)

डोगरी—"माल त्रुट्टी गई।"

चरखे की माल (रस्सी जिसके कारण चरखा घूमता है) टूट गई।

डोगरी—उत्थें पुज्जना माल होई गया।

वहां पहुँचना कठिन हो गया।

इसी प्रकार —

बार=दिन

बार=बाहर

बार=बहार, वसन्त ऋतु,

डोगरी=अज्ज के बार ऐ?

आज क्या दिन है?

डोगरी=इसी बॉर कड्डो।

इसको बाहर निकालो।

डोगरी=''बारां परतोई आइयां,

तुम्मी घर आई जा।

वसन्त ऋतु फिर आ गई है, तुम भी घर लौट आओ—

प्रियतम!

एक उदाहरण और—

ताड़=नज़र

ताड़=गाड़ो

ताड़=झुण्ड

डोगरी—ओदे उप्पर ताड़ रखो।

उस पर दृष्टि रखो।

डोगरी—कन्दै च मेख ताड़।

दीवार में कील गाड़ो।

डोगरी—ताड़ दी ताड़ आई गई।

झुण्ड के झुण्ड आ गये।

इसी प्रकार डोगरी में संकलपना की दृष्टि से भी कई विशेषताएँ हैं, जो पृथक् लेख का विषय हैं।

डोगरी जम्मू प्रान्त की प्रमुख भाषा है और जम्मू कश्मीर सरकार ने इसे प्रादेशिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है।

सहायक ग्रन्थ सूची—

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया :—ग्रियर्सन

२. डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा जी से पत्र व्यवहार

३. इण्डियन लिंग्विस्टिक्स १९३१

डोगरी भाषा का संक्षिप्त परिचय ले० प्रो० गौरीशंकर।

४. त्रिवेणी लेखक श्रीमती शक्ति शर्मा, श्यामलाल शर्मा, पृष्ठ १९,२०,२३,२४

५. प्राचीन संस्कृत साहित्य में डुग्गर ले० डॉ० वेदकुमारी।

६. वेदों में डुग्गर—भाषण डॉ० हरि रामचन्द्र दिवेकर।

कश्मीर की रानी झांसी:कोटा

जवाहरलाल हण्डू

कश्मीर के अतीतका सबसे बड़ा आकर्षण, जो इस भूस्वर्ग के इतिहास के कई परिवर्तनों के बावजूद हमें आकर्पित करता है, इसकी एकता, संघर्ष और ताजगी में है। इस घाटी के इतिहास की एक और विशेषता, यहां की महान नारियों का राज-पाट और जनता की सेवाओं में सक्रिय भाग लेना है। रानी 'दिद्दा', 'सूर्यमती', सुगन्धा' और 'कोटा' के अतिरिक्त और भी कई उदाहरण हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि कश्मीरी औरत ने आज से शताब्दियों पूर्व राजसेवा तथा जनता के सुख के लिए विशेष प्रशंसनीय कार्य किये हैं। आज भी इतिहास ऐसे महान चरित्रों को दोहराने में गर्व अनुभव करता है।

झाँसी की रानी की तरह बहादुर : कश्मीर की रानी कोटा

तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ में ही, बड़ी कठिनाइयों और संघर्ष के बाद 'इस्लाम' कश्मीर में फैलने लगा था। इस नये धर्म के प्रचार में यहां के कई राजाओं का भी हाथ था। राज्य में अशान्ति और उपद्रव के विनाशक बीज बोने में उन्हें अंशतः सफलता भी प्राप्त हुई। अशान्ति, उपद्रव और षड्यन्त्र का भयावह नाटक कश्मीर के रंगमंच पर, २० साल तक निरन्तर खेला गया। इतिहास के इस वात्याचक्र से कश्मीर को उभारने वाली थी बुद्धिमान और वीर कोटा रानी।

कोटारानी राजा साहदेव (१३०१-२० ई०) की सुन्दर एवं इकलौती बेटी थी। साहदेव स्वयं एक कमजोर तथा बेवकूफ राजा था। इस कारण कोटा ही देश की यथार्थ शासिका थी। वह न केवल एक वीर योद्धा थी अपितु कुशल शासक भी। पर क्योंकि शासन की नींव हिलने लगी थी, इसे गिरने से रोकना और एक नयी

शक्ल देना कोटा रानी के लिए आरम्भ में अत्यन्त कठिन कार्य था, जिसे बिना किसी राजनीतिक सहयोगी के पूर्ण करना असम्भव था। संयोंगवश उन दिनों लद्दाख के एक भयंकर गृह-युद्ध में "कलमाना कबीले" ने लद्दाख के शासकों के विरुद्ध विद्रोह करके अत्यन्त क्रूरता से राजवंश के लगभग सभी उत्तराधिकारियों की निर्मम हत्या की; शाहजादा "रेंचन", जो उस समय लद्दाख के तख्त का वास्तविक हक-दार था, चालाकी से जान बचाकर एक सौ सशस्त्र सैनिकों के साथ भाग कर कश्मीर आया। कोटा को रेंचन के रूप में राजनीतिक सहयोगी प्राप्त हुआ और उसकी कमजोरियों तथा योग्यताओं का लाभ उठा कर वह कश्मीर के पुर्ननिर्माण में संलग्न हुई।

ठीक उसी समय एक और तुर्किस्तानी योद्धा शाहमीर, जो अपने स्वप्न को पूर्ण करने के हेतु कश्मीर आया था, कोटा के साथ मिल गया। शाहमीर को स्वप्न में कहा गया था कि वह कश्मीर का भावी शासक होगा। इसी कारण अपने समग्र वंश के साथ वर्षों की यात्रा के पश्चात् वह घाटी में घुस आया था। रेंचन की तरह शाहमीर ने भी अपनी योग्यता एवं चातुर्य से राजदरबार में उचित स्थान प्राप्त किया और धीरे-धीरे इतनी प्रगति की कि वह कश्मीर का महामत्य नियुक्त हुआ। यह तुर्किस्तानी यात्री बाद में "सुलतान-ए-शाहमीर" के नाम से तख्तनशीन हुआ।

कोटा रानी ने अभी शाहमीर और रेंचन के सहयोग का पूरा लाभ भी न उठाया था कि कश्मीर को एक तुर्की आक्रामक "अचुला" ने ललकारा। उसने कश्मीर की सीमाओं का अतिक्रमण किया और हीरापुर के खतरनाक दर्रे से वादी में घुसा। एक हाथ में चमकती हुई तलवार और दूसरे में घोड़े की लगाम थामे, कोटा ने भी अपनी समग्र सैनिक शक्ति रणक्षेत्र में उतार दी। कई दिन के घमासान युद्ध के परिणामस्वरूप विजय का सेहरा कोटा के सिर बंधा।

अचुलाकी मृत्यु के बाद राज्य की स्थिति थोड़ी सुधर गयी। परन्तु विद्रोही सामन्त अब भी कोटा के विरुद्ध षड्यन्त्रों एवं साजिशों में तल्लीन थे। एक बार कोटा रानी को षड्यन्त्र के जाल में फंसा कर उसे दुर्ग में कैद करने में इन विद्रोही सरदारों को सफलता भी मिली पर अपनी बुद्धिमत्ता एवं मनोबल से कोटा ने न सिर्फ मुक्ति ही पायी, अपितु बागी सरदार को फांसी पर लटकाने में भी सफल हुई।

शाहमीर आस्तीन का सांप निकला

एक ओर से समग्र राज्य इस प्रकार के विद्रोहों एवं षड्यन्त्रों का शिकार होता जा रहा था, तो दूसरी ओर शाहमीर इन नाज़ुक परिस्थितियों का लाभ उठाकर

अधिक शक्ति-संचय करने में तल्लीन था। शाहमीर की विद्रोही प्रवृत्तियों पर कोटा को पहले ही सन्देह हो चुका था। इस कारण उसकी उपेक्षा करके उसने अपने दरबारी भिक्षण भट्ट को प्रधान बनाकर उसे कई मन्सब एवं जागीरें उपहार में दीं। शाह-मीर भिक्षण भट्ट पर कोटा की इस कृपा-दृष्टि को सहन न कर सका। और उसने भिक्षण भट्ट को छल से कत्ल कर दिया। इसके तुरन्त बाद कोटा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। कोटा ने चुनौती को स्वीकारा और पूरी ताकत से शत्रु का मुकाबला किया। घमासान युद्ध के बाद कोटा की विजय होने ही वाली थी कि शाहमीर का एक सामन्त समधी सेनाएं लेकर युद्धस्थल में कूद पड़ा। शाहमीर की ताकत दुगुनी हो गयी और घमासान युद्ध के बावजूद भी कोटा की हार हुई। उसे बन्दी बनाया गया। शाहमीर ने उससे विवशतापूर्वक विवाह किया। एक रात उसे हरम में बुलाया गया। अमूल्य वस्त्र एवं आभूषण धारण कर कोटा शाहमीर के सामने हाजिर हुई। विजय के नशे में इतराता हुआ शाहमीर आगे बढ़ा, परन्तु इससे पहले कि शाहमीर उसको अपनी बांहों में समेट लेता, कोटा रानी ने अपने ही खंजर से अपनी समाप्ति की। इस प्रकार कोटा की मृत्यु के साथ ही कश्मीर का एक स्वर्ण अध्याय भी समाप्त हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अन्तिम सांस रुकते समय भी कोटा रानी के हाथ में खंजर था शाहमीर का हाथ नहीं। निस्सन्देह वह कश्मीर की "रानी झांसी" थी।

कश्मीर की आदि कवयित्री—

लल्लेश्वरी

डॉ० कौशल्या वल्ली

लल्लेश्वरी कश्मीर में अवतार मानी जाती है। अधिक प्रसिद्ध नाम ललद्यद है। यद्यपि उनके विषय में बहुत सी कहानियां प्रसिद्ध हैं किन्तु यथार्थ में उनके विषय में बहुत कम ज्ञात है। इतना निश्चित है कि वह १४वीं शती में विद्यमान थी और सय्यद अली हमदानी के कश्मीर में आने के समय उनकी सम-सामयिक थी। उनका विवाह एक अच्छ वंश में हुआ था पर सास उनके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया करती थी। लल्ला लगभग भूखी ही रहती थी।

एक बार ससुराल वालों ने भेड़ मारी। पड़ोसियों ने लल्लेश्वरी से कहा, "आज तुम्हें भरपेट अन्न और मांस मिलेगा।" लल्ला ने उत्तर दिया---"चाहे बड़ी भेड़ मारी जाय अथवा छोटी, लल्ला सदैव खाने के स्थान पर गोलपत्थर ही पाती है।"[1] जब कभी लल्ला खाना खाती, विशेषतया दूसरे लोगों की उपस्थिति में, सास थाली में गोल पत्थर रख देती और ऊपर चावलों की पतली तह जमा देती, जिससे कि चावल बहुत अधिक दिखाई दें। लल्ला ये सब कभी किसी से न कहती। उनका सन्तोष और धैर्य्य मानवता के लिए उदाहरण है। लल्ला प्रातः सवेरे उठ कर नदी पर जाती, स्नानान्तर पानी भर कर लाती।

---

१. होण्ड मारहन किन कठ, ललि नीलवट चील न जाँह।

एक दिन वह प्रात: सवेरे उठी और नदी पर नहाने गई। सास ने उसके चरित्र पर आक्षेप लगाया और बेटे के इतने कान भरे कि वह हाथ में छड़ी ले कर लल्ला को नदी पर पकड़ने चला। लल्ला अपने कन्धे पर पानी का घड़ा लिए हुए लौट रही थी। पति ने छड़ी से घड़े को तोड़ दिया और जल घड़े के रूप में लल्ला के कन्धे पर हो रहा। लल्ला ने घर आकर सब बर्तन भर लिए और शेष पानी कन्धे पर ही रहा। लल्ला ने सास को कहा, "नाग चाहिए कि त्राग।" सास ने उत्तर दिया—'त्राग'। लल्ला ने पानी को खिड़की से फेंका और जहां पानी गिरा वही त्राग कहलाया। कहा जाता है कि लगभग ६०० साल के लिए त्राग में पानी था। लल्ला का पति आश्चर्यान्वित हुआ और भेद को जान गया। लल्ला को घर छोड़ अर्धनग्नावस्था में घूमना पड़ा। नग्नावस्था में घूमने का कारण पूछे जाने पर लल्ला ने उत्तर दिया—"वास्तविक अर्थ में वही मनुष्य है जो परमात्मा से डरता है और आज तक उसने किसी ऐसे मानव को नहीं देखा।" कहा जाता है कि उसने एक बार दूर से सय्यद अली हमदानी को आते हुए देखा और चिल्लाई—"अरे, मैंने एक मर्द देखा है।" वह नानबाई की दुकान पर गई तथा तन्दूर में छलांग लगा दी और जलती हुई आग से सुन्दर कपड़े पहन कर बाहर निकली।

लल्ला की रचनाओं के विषय में कोई विश्वसनीय हस्तलेख उपलब्ध नहीं है। कतिपय जनों ने निजी तौर पर लल्ला के रचे हुए श्लोक एकत्रित किए हैं, किन्तु कोई भी कृति सम्पूर्ण नहीं है। दो सम्पादकों से सम्पादित छन्द मेल नहीं खाते हैं। एक समाधान है—प्राचीन भारतीय प्रथा द्वारा साहित्य, स्मृति पटल पर चित्रित होता था, यह प्रथा अभी भी कश्मीर के गांवों में प्रचलित है। इस क्षेत्र में गांव-गांव में घूम कर लल्ला के वाक्यों को लिखित रूप में एकत्रित करने की आवश्यकता है। लल्ला के गीत कश्मीरी भाषा के पुराने रूप में रचे हुए हैं, तदपि लल्ला ने जिस रूप में कहा था, बहुत सम्भव है. उसी रूप में उपलब्ध नहीं हैं। जैसे समय समय पर भाषा बदलती रहती है, उसी प्रकार लल्ला के 'वाख़' का बाह्य रूप भी समय समय पर बदलता रहा है। तब भी लल्ला के प्रति निष्ठा तथा रचना के छन्द रूप ने प्राचीन रूप को बहुत कुछ सुरक्षित रखा है।

लल्ला के कई 'वाख़' स्त्री के घरेलू जीवन के प्रति कर्त्तव्य पर प्रकाश डालते हैं। यथा छायादार वृक्ष धूप में शान्त पथिक को छाया प्रदान करता है तथा सुशील स्त्रियां दिन में श्रान्त मानव की थकान दूर करने में साधन बनती

हैं। कइयों की स्त्रियां द्वार पर स्थित कुत्ते के समान हैं जो काटने को दौड़ता है। कई स्त्रियां झगड़ालू हैं।[2]

लल्लेश्वरी ने अन्न और वेशभूषा के विषय में बात छेड़ी है। उनके अनुसार अधिक खाने से मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं होता, न खाने से अहकारी बनता है, आवश्यकतानुसार खाने से आत्मदर्शन के द्वार खुल जाते हैं। कपड़े सर्दी दूर करने के लिए पहनने होते हैं खाना भूख की सन्तुष्टि के लिए होता है।[3]

लल्ला ने राष्ट्रवाद का प्रचार किया। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लल्ला ने वर्णन किया कि शिव घट घट में व्यापक है अत: हिन्दु और मुसलमान का भेद करना निरर्थक ही नहीं अपितु हानिकारक है। बुद्धिमानी और विवेक का प्रमाण यही है कि मनुष्य अपने आप को जान ले। अपने आप को जानना ही ईश्वर को पहचानना है।[4]

आत्मदर्शन का साधन द्वैतभाव से रहित होता है। अपने और पराये में भेदभाव न करना ही आत्मदर्शन की वास्तविक कुंजी है।[5] इस अभ्यास में सन्तोष और धैर्य्य से काम लेना पड़ता है। सन्तोष और धैर्य्य से काम लेने में कठिनाई प्रतीत होती है किन्तु परिणाम मधुर होता है।[6]

---

२. कोंचन रन छय शिहिज बनी
न्येरव न्यबर शुहुल करव
कोंचन रन जय बर प्यठ हुनी
न्येरव न्यबर त जंगय स्ययवि
कोंचन रन छय अदल त वदल
कोंचन रन छय जदल छय्य।

३. ख्यन ख्यन करान कुन नो वातख, न ख्यन गछख अहंकारी।
सोमुय ख्ये मालि सोमुय आसख समि ख्यन मुचरनय बरञन ता'री॥
यवु तूर चलि तिम अम्बर ह्यता
ब्वछि यवु गलि तिय आहार अन्।

४. शिव छुय थलि थलि रोज़ान मो ज़ान हयोंद तु मुसलमान।
त्रुकुय छुख तु पनुनुय पान परज़ान
सुय हा मालि छ य साहिबिस सीव्य ज़ानों ज़ान।

५. पर तू पान यम्य सोमुय मोन, यम्य हयुहुय मोन दिन क्योह राथ।
यमिसिय अद्वय मन सोम्पुन तमिय ड्यूठुय सुरगुरुनाथ॥

लल्लेश्वरी के अनुसार मानव की मानवता एक-दूसरे से सहानुभूति रखने में है, दूसरों की पीड़ा का अनुभव करने में है। घायल की गति घायल ही जानता है। दूसरों की पीड़ा को जानने का अधिकारी बनना पड़ता है। जिसने दुःख भोगा हो वही दुःख को जानता है।[7]

मानव शील, आदर तथा मान के लिए कितनी चेष्टाएं करता है। कार्य, कार्य के लिए नहीं पर नाम और यश के लिए किया जाता है। पर जीवन की वास्तविकता को जानने वाला जानता है कि आदर, यश तथा मान अस्थायी हैं। जिस प्रकार टोकरी में पानी नहीं ठहरता, इसी प्रकार मिला हुआ यश, आदर और मान अस्थाई हैं। अतएव मानव ने अपना कर्त्तव्य करना है, शील और मान के पीछे पागल नहीं होना है।[8]

आधुनिक शिक्षा प्रणाली वास्तविक शिक्षा नहीं देती। उपाधियां आभूषणों के समान बन गई हैं। शिक्षित वर्ग अशिक्षित वर्ग की अपेक्षा निन्दा में अधिक व्यस्त दिखते हैं।[9]

लल्लेश्वरी की कृतियों से स्पष्ट है कि वह शैव थी। शैवदर्शन समस्त विचारधारा का प्रतीक है। शैवदर्शन में ३६ सिद्धान्त हैं, जब कि सांख्य और योग में २५ सिद्धान्त हैं। आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल पंचमहाभूत हैं। पृथ्वी में पांच गुण हैं—ध्वनि, स्पर्श, रंग, स्वाद और सुगन्धि। इन गुणों को तन्मात्र कहते हैं। महाभूतों की अपेक्षा तन्मात्र सूक्ष्म हैं। शैवदर्शनानुसार ज्ञान इन्द्रियां और मन सात्विक तथा कर्मेन्द्रियां राजस अहंकारों से उत्पन्न होती हैं। दूसरे शब्दों में इन्द्रियां पंचभूतों से नहीं अपितु अहंकार के विभिन्न रूपों से उत्पन्न होती हैं। व्यक्तिगत दृष्टिकोण से बुद्धि निश्चयात्मक गुण है। बुद्धि भी विकृति है। बुद्धि, अहंकार, मन और चित्र अन्तरेन्द्रियां हैं।

---

६. सबर छुय ज्युर मर्च तु नूनुय ख्यनु छुय ट्योट तु हयस कुस।
सबर छुय सोनसुन्द टूरुय। म्वल छुय थोद तय हयस कुस।

७. दोद क्या लानि यस नो बने, गमुक्य जामि हा वलिथ तने।
गरु गरु फीरुस प्ययम कने, ड्यूठुम न कांह ति पननि कने।

८. शील तु मान छुय पोज ऋज्जिय म्वछि यम्य शेर मलय्वद वाव।
होस्तुय युस मस्तवाल गंडे तिह यस तगे सु अद निहाल।

९ जल हा मालि लूसुय न पकान पकान
सिरिय लूसुय न वलंघान सुमेर।
चन्द्रम लूसुय न ज्यवान तु मरान
मनुष्य लूसुय न निन्दा करान।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार मिलना ही भाग्य है। काल, नियति, कला, विद्या और राग को पंचकंचुक कहा जाता है। शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या पांच शुद्ध सिद्धान्त हैं। शिवतत्व शाश्वत है और सर्व व्यापक है। यह ज्ञानात्मक है और क्रियात्मक है तथा अन्य सिद्धान्तों का कारण है।

शक्तितत्त्व शिवतत्त्व की पहली उत्पत्ति है। शक्ति तत्त्व से सदाशिव तत्त्व की उत्पत्ति होती है। सदाशिव तत्त्व से ईश्वरतत्त्व की और ईश्वरतत्त्व से शुद्ध-विद्या तत्त्व की उत्पत्ति होतो है। जब मानव शिव में मिल जाता है तभी शिव-तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। शैवमत के आदर्श और यथार्थवादी विचारधारा में यही विभिन्नता है। यथार्थवादी शैवदर्शन के अनुसार मुक्ति का अर्थ शिव के साथ एकाकार होना नहीं, मुक्त आत्माएं आत्मा के रूप में विद्यमान रहती हैं, अन्यथा मुक्ति का भोक्ता कौन होता। ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर नित्यमुक्त है। आत्मा परमात्मा नहीं, आत्मा में परमात्मा के लक्षण हैं। जीवनमुक्ति के लिए कोई कर्त्तव्य नहीं होता। यदि वह कोई पुण्य कार्य करता है तो वह सम्भवतया आदत के कारण। वह सर्वथा सुसंगति ओर सुस्थानों में देखा जाता है। पर ऐसी आत्माओं के लिए देश, काल अथवा क्रिया का कोई बन्धन नहीं है। जो कुछ भी वह करते हैं, वह वर्णन है, सिद्धान्त नहीं। सिद्धान्त सिद्ध के लिए नहीं साधक के के लिए है।

यथार्थवादियों के अनुसार ज्ञानप्राप्ति स्थायी आत्मदर्शन की प्राप्ति नहीं है। प्रारब्ध कर्म के असमाप्त होने पर, नये कर्मफल ज्ञान द्वारा नष्ट होते हैं और सत्कार्य प्राप्त ज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए है। शिवांगम उपनिष्दों के समान ही प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा का आधार है।

उपर्युक्त संक्षिप्त शैवदर्शन को दृष्टिगोचर में रखते हुए, लल्ला के जीवन-दर्शन को लिया जाये। लल्ला के अनुसार परमात्मा अन्यत्र कहीं नहीं, मनुष्य के भीतर ही है, केवल मनुष्य ने उसको पहचाना है। शिव को पहचानने के लिए धैर्य्य की आवश्यकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या का विजेता बनने के बाद ही हम आत्मप्रकाश के अधिकारी बन सकते हैं। आत्मदर्शन की प्राप्ति के लिए मन की पवित्रता, इच्छाओं पर स्वामित्व और भगवत्शरण होना ही साधन

---

१०. यम्य लूभ मनमथ मद मारुन, तिमय मारिथ त लोगुन दास।
यमिय सहज़ ईश्वर गोरुन तमिय सोरुय व्युन्दुन न्यास॥
चल चित्त वोन्दस भय मो भर। चात्र च्यन्त करान पानय अनाद॥
............स्यौद हरिय कर, केवल तसुन्दुय तोरुक नाद॥

है। मनुष्य को निर्भय होना चाहिए उसे केवल भगवान् का भय होना चाहिए।[10] ज्ञानप्राप्ति के लिए परमात्मा पर आश्रित होना आवश्यक है।'' सच्चा मानव सुख दु:ख से परे है तथा प्रशंसा और निन्दा से प्रभावित नहीं होता।[11]

सच्चा मानव जान के भी अनजान रहता है, देखकर भी अन्धे का सा आचरण करता है, जो जैसा वोलता है उसके साथ वैसा ही व्यवहार करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह अभिमान तथा ईर्ष्या का स्वामी परमात्मा बनता है और इन्हीं छ: चीजों का दास पशु है चाहे वह मनुष्यरूप में ही क्यों न हो।[12]

लल्ला को एक ही परमात्मा में निश्चल विश्वास था। उसने परमात्मा को अपने भीतर देखा था आधुनिक विद्यार्जन के युग में हम पढ़ते रहते हैं किन्तु तब भी अर्थ में वास्तविक निरक्षर रहते हैं किन्तु वही अध्ययन वास्तविक अध्ययन है जिस को हम व्यवहार में लाएँ और कुछ प्राप्ति हो। लल्ला ने जीवन भर केवल एक ही शब्द पर मनन किया और उसी के परिणामस्वरूप वह पीतल से सोना बन गई। संसार हमारे मन का प्रतिबिम्ब है अत: किसी के साथ क्रोध न करके सबके साथ प्रेम का व्यवहार करना चाहिए।[13]

मनुष्य इस संसार में कुछ प्रयोजन लेके आता है, लेकिन संसार के ऐश्वर्य में फंस कर वह अपने उद्देश्य को भूल जाता है तथा मरने के समय वह सोचता है—क्या मैंने कोई ऐसा काम किया है जो मेरे काम आएगा।[14] परम सत्ता मनुष्य के बहुत निकट है लेकिन उसको देखने का अधिकारी अपने को बनाना है। लल्ला ने बारम्बार कहा है कि उसने अपनी इन्द्रियों को बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी कर दिया है।[15]

अद्वैतभाव पर लल्लेश्वरी ने बहुत ज़ोर दिया है। लल्ला ने प्रेम के महत्त्व को बतलाया है। परमात्मा को जानने के लिए प्रेम की आवश्यकता है।

११. **गाल गडिन्यम बोल पडिन्यम। दप्यनम तिह यस युथ रोचे।**
सहज़ कुसुमव बोल पडिन्यम्। बो अमलाल कस क्याह स्वचे॥

१२. **च श्यन स्वामी बों श्ययि मुबिस।**

१३. **मनस मन भवसरस, छोश्रू कोप् निरिस ता नारछ्यूक्।**
लिकात् लछय् तूला कोटू तुलि तातुल ना क्अ॥

१४. **आयस वते गयस न वते स्यहमंज़ सोथे लूसुम दोह।**

१५. **चदस वुछुम हार न अथे, नावि तारस दिमि क्या बोह॥**
विहिर वर्यस वोनुय आसे। निशि छुय तय प्रजनावतन॥

शास्त्रों के अध्ययन से या माला जपने से ही द्वैतभाव दूर नहीं होता। आत्मदर्शन के लिए विचार को व्यवहार में लाना आवश्यक है। प्रत्येक काम को ईश्वरसमर्पण करने में कल्याण है। ईश्वर ज्ञान के समान कोई ज्ञान नहीं। ईश्वर अनुसंधान के समान कोई तीर्थयात्रा नहीं। परमात्मा के समान कोई बन्धु नहीं, ईश्वर-भय के समान कोई आनन्द नहीं।[16]

लल्ला दूसरों की निन्दा पर ध्यान नहीं देती, केवल ईश्वरानुग्रह के लिए चिन्तित थी। अहंकार बहुत बड़ी बाधा है। मनुष्य ने अपने को शून्य में मिलाना होता है।[17]

संक्षेप में लल्ला कश्मीरी संस्कृति और सभ्यता की प्रतीक थी, भारतीय विचारधारा—मानव ही ईश्वर है—को लल्लेश्वरी ने अपने जीवन के, व्यवहार में दिखाया।

---

१६ मयस ह्.युव न प्रकाश कुन्ये पयस ह्.युव न तीरथ कांह
दयस हयुव न बाँधव कुन्ये, भयस ह्.युव न स्वख कांह।

१७ धोब्य यलि छावनस धोब्य कनि प्यठिय, सोनर तु साबन
मछनम यछिय सिच, यलि फिरुनम ह्नि ह्नि काची
अद लल म्य पा'वम परम गथ।

देवभूमि कश्मीर

प्रो० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

कश्मीर भूस्वर्ग है। संसार के सभी रमणीक स्थानों में इसका स्थान सर्वोच्च है। यह आदियुग से देवताओं का क्रीड़ास्थल रहा है। सृष्टि के निर्माण की कल्पना मनु ने पीर पंचाल की गगनचुम्बी चोटी पर बैठ कर ही की थी। इसी चोटी के साथ जल-प्रलय के समय उन की नौका टकराई थी। जहां कश्मीर प्रकृति सुन्दरी का क्रीड़ास्थल है वहां दोनों की चमत्कारिक लीलाओं का केन्द्र भी यही रहा हैं। इस लिए इस की भूमि का अणु भी जन्म जन्मातरों को पवित्र कर देने वाला है। यहां का निवास इसी लिये अत्यन्त दुर्लभ और सौभाग्य का चिन्ह शास्त्रों में कहा गया है :

> दुर्लभं मानुष्य जन्म द्विजत्वं तत्र दुर्लभम्।
> तत्रापि भारतं क्षेत्रं तत्रापि च सतीसरः॥

(भृंगीश संहिता)

संसार के समग्र तीर्थ इसी वितस्ता नदी के तट पर सतीसर में (श्रीनगर) निवास करते हैं, जैसे :

> पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि काश्मीरमण्डले

(नीलमत पुराण)

यहीं वेरीनाग स्थान पर श्री महादेव जी ने त्रिशूल का प्रहार करके वितस्ता (जेहलम) नदी को पाताल से निकाला था। वितस्ता का जल संसार के सभी जलों से पवित्र माना गया है इस में स्नान मात्र करने से जन्म जन्मांतरों के पाप नष्ट हो जाते हैं :

> वितस्ता हरते पापं जन्म जन्मातरैः कृतम्
> कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गंगासागर संगमे।

स्नानाद्वर्ष महेशानि यत्फलं प्राप्नुयान्नरः ।
तत्फल च वितस्तायाः एकाहेन च स्नानतः ॥

(वितस्तामाहात्म्य)

कुरुक्षेत्र और प्रयाग तथा गंगा सागर के संगम पर एक वर्ष तक स्नान करने का जो फल मिलता है वह फल जेहलम (वितस्ता) में एक दिन के स्नान से मिल जाता है ।

और भी :

गंगा स्नानं सहस्त्रात्तु नर्मदा स्नान लक्षतः ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥

गंगा के हजार स्नान से और नर्मदा के लाख स्नान से जो फल प्राप्त होता है वह फल जेहलम में एक दिन स्नान करने से मिल जाता है ।

उपर्युक्त उद्धरणों से हम कश्मीर वासी इस वितस्ता की सर्वोपरि महिमा को भलीभांति जान सकते हैं । इसी लिए पुराणों में कश्मीर को तीर्थराज कहा गया है ।

भाद्रपद मास में जब सूर्य सिंह राशि में था श्री महादेव जी ने त्रिशूल द्वारा इसी वितस्ता नदी को पाताल से निकाला था । इसी प्रकार श्री वामन अवतार ने द्वादशी के दिन क्रम सरोवर से विशोका नाम की नदी निकाली थी । इन नदियों में स्नान करने का अनन्त पुण्य पुराणों में लिखा है । यहीं हरिश्चन्द्र नामक तीर्थ पर राजा हरिश्चन्द्र को मुक्ति मिली थी ।

इसी कश्मीर मंडल में भगवान परशुराम ने आकर हिमालय की गुफा में भगवती चण्डी की आराधना की और भगवती ने जब प्रत्यक्ष होकर वर मांगने के लिए कहा तो उन्होंने मातृ-हत्या दोष की निवृत्ति के लिए प्रार्थना की । तत्काल भगवती ने रामा नामक नदी उत्पन्न की । उस में परशुराम जी ने स्नान कर के, मातृ-हत्या दोष से मुक्ति पाई । इसी पवित्र भूमि पर ब्रह्मा से व्यास ने वेद पढ़े । जिस स्थान पर यह घटना हुई उसका प्राचीन नाम अर्थविचयन है । वितस्ता के पार शिवजी ने सोलह हजार गणों का, जो देवी के शाप से राक्षस बन गए थे, उद्धार किया तभी से उस स्थान का नाम शिवपार (सोपुर) पड़ा जो आज भी सोपोर के नाम से विख्यात है । इसी देव भूमि में एक बार ब्रह्मा जी शिव पूजन करने लगे, उन्हों ने ओ३म् शिव जी पर सौ कमल फूल चढ़ाने थे । किन्तु उन में एक कम हो गया ब्रह्मा जी ने तत्काल अपनी आंख रूपी कमल देकर संख्या की पूर्ति की । तत्काल भगवान शिव ने प्रकट होकर ब्रह्मा को वर दिया । उसी स्थान का

नाम पदमपुर पड़ा, जो आज 'पामपुर' के नाम से विख्यात है। एक बार कश्मीर के कौलजातीय ब्राह्मण किसी जंगल में भगवान शिव की घोर तवस्या करने लगे। प्रसन्न हो कर शिव प्रकट हुए और उन ब्राह्मणों को वर मांगने के लिए कहा। ब्राह्मणों ने भगवान शिव के आगे उनकी माया की सीमा देखने की प्रार्थना की। शिवजी ने वहीं पर इन्हें अपनी माया की सीमा दिखलाई। तभी से उस स्थान का नाम कौलिच्छावन पड़ा जो आज अच्छावल के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार गुलमर्ग का वास्तविक नाम गौरीमार्ग था यह स्थान शिव ने गौरी (पार्वती) को रहने के लिए दिया था तभी से इसे गौरीमार्ग (गुलमर्ग) कहा जाने लगा। एक बार यहां वितस्ता के सूख जाने पर इसी धरती पर प्रकट होकर भगवान विष्णु ने अपने चरणोदक से इसी नदी को पुनः वहा दिया। श्री गणेश जीने भी इस में सहायता की तभी से उस स्थान का नाम गणपति क्षेत्र पड़ा।

वितस्ता के साथ महादेव जी का इतना स्नेह था कि एक बार राक्षस गण इसे ध्वस्त करने के लिए तैयार हुए। जब महादेव जी को पता चला तो उन्हों ने महाकाल का रूप धारण करके राक्षसों को इस कुकृत्य से दूर भगाया। आज भी उस स्थान का नाम महाकाल तीर्थ है जहां भगवान महाकाल की मूर्ति स्थापित की है। उस के लिए लिखा है :

वितस्तायां नरः स्नात्वा महाकालस्य सन्निधौ।

न लिप्यते महापापैः ब्रह्महत्यादिकैरपि ॥

उपास्य च महाकाली महाकालस्य सन्निधौ।

धनमापुस्तथा पुत्रान् पशूंश्च जगदबिम्के।

प्राप्नोति परमं पुण्यं ह्यन्ते सायुज्यमेव च।

त्रयस्त्रिंशत्कोटयश्च देवानामपि तैजसाम्।

कलमर्चितुमायान्ति सर्गयोरुभयोरपि ॥

महाकाल मन्दिर के पास वितस्ता में स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या जैसे पापों से भी लिप्त नहीं होता। इसी महाकाल के समीप महाकाली की उपासना करके मनुष्य धन, आयु, पुत्र और पशु धन को प्राप्त करता हुआ अन्त में मुक्ति प्राप्त करता है। ३३ करोड़ देवता इस महाकाल की पूजा करने के लिए दोनों सर्गों (सृष्टियों) में आया करते हैं।

इसी कश्मीर में शिवजी ने अपने पुत्र श्री गणेश तथा कार्तिकेय को ब्रह्म दीक्षा दी थी।

यहीं पर लक्ष्मीतीर्थ में विष्णु, इन्द्र, स्वयंभू ने वितस्ता में देवों के साथ स्नान किये थे जैसे :

लक्ष्मी स्थानादधोभागे विष्णु नाशंभुनापि च ।
स्नानं चक्रे तदा पुण्यं देवैरपि सवासबैः ॥

(वि० म०)

इस स्थान का नाम भयानी क्षेत्र है । यह स्थान कितना पपित्र है, नीचे के श्लोक से स्पष्ट है :

लक्ष्मीक्षेत्रात्समारम्य भवानीज्ञेत्रमन्ततः ।
कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठं भवनं शुभम्

(वि० म०)

लक्ष्मी क्षेत्र से भवानी क्षेत्र तक कीड़ा भी मर कर वैकुण्ठ प्राप्त करता है ।

जब कश्मीर मण्डल में आततायियों की प्रधानता हो गई और आचार विचार, धर्म कर्म सब नष्ट होने लगे तब भगवान शिव ने अपने शरीर को अग्नि स्वरूप बना कर सब अत्याचारियों को जला डाला और तत्पश्चात कशमीर में शांति सुख और न्याय तथा धर्म का साम्राज्य पुनः स्थापित हो गया । इसी स्थान का नाम लोकारितीर्थ पड़ा ।

एक बार हिमालय शिखर के नीचे पार्वती को दोहद उत्पन्न हुआ । सब देवी देवता यहा इकट्ठें हो गए । उसी समय पार्वती का पुंसवन स्संकार किया । तदनन्तर पार्वती जी ने यहां अपने स्तनों से दूध गिराया उसी दूध से एक नदी वह निकली जिसे आज भी दूध गंगा कहा जाता है । इसी नदी का नाम श्वेता भी है । लिखा है :

श्वेता वितस्तयो! संगः पुनाति भुवनत्रयम् । (वि० म०)

श्वेता और वितस्ता का संगम तीनों लोकों को पवित्र करता है !

जब गय नामक असुर ने अपनी पाँच अंगुलियों से वितस्ता को छोटी नदियों से बहा दिया तो कश्यप जी बड़े दुःखी होकर विष्णु के पास गए और सब वृत्तांत सुनाया । विष्णु जी ने अपने सुदर्शन चक्र से उस राक्षस का वध किया । इसी समय विष्णु जी के पसीने की धार वितस्ता के जल में गिरी और उस स्थान का नाम चित्रारिक्षेत्र पड़ गया । उन पांच नदियों को आज भी पंच गंगा कहा जाता है ।

स्विन्नारि क्षेत्र या पंच गंगा का स्थान अत्यंत ही पवित्र माना गया है । इस स्थान पर स्नान व दान का अनन्त फल है ।

स्विन्नरि देशे देवेशि स्नात्वा मुच्येत संकटात् ।

(वि० म०)

स्विन्नारि क्षेत्र में स्नान करके मनुष्य के संकट नष्ट हो जाते हैं ।

पञ्चनाले नरः स्नात्वा कोटिजन्म भवैरधैः ।
मुच्यते जगदीशानि इति सत्यं वदामि ते ।

पंच नाल (पंच गंगा) में मनुष्य स्नान करके करोड़ जन्मों के किए गये पापों से मुक्ति पा लेता है ।

महादेव ने कामदेव को यहीं पर भस्म किया था जैसे :

कामोऽपि धनुःगृह्य वसतेन समं तदा ।
प्रतस्थे हिमवच्छृंग सिद्धचारण सेवितम् ।।

(वि० म०)

इस विवरण से काश्मीर के देवभूमि होने में कोई संदेह नहीं रह जाता । देवताओं की अधिकतर घटनायें यहीं पर घटी थीं । जहां-जहां यह घटनायें हुई वहां-वहां परम पवित्र तीर्थ बन गये जो आज भी उसी रूप में वर्तमान हैं । भारत वर्ष के सभी तीर्थों में प्रधान तीर्थ कश्मीर है । यहीं पर प्रयाग राज की त्रिवेणी तथा अक्षय वट हैं । भृंगीश संहिता में स्पष्ट लिखा हुआ है कि भारत में तीन प्रयाग हैं एक गंगा यमुना और सरस्वती का संगम, दूसरा अलक नंदा और गंगा का संगम और तीसरा मारी, सिंधु तथा वितस्ता का संगम । किन्तु तीसरा प्रयाग (मारी सिंधु वितस्ता) सब से श्रेष्ठ है । जैसे :

त्रिविधें ऽप्यत्र जगति प्रयागः प्रकटी कृतः ।
एको गंगायमुनयोः गंगायमुनयोः संगमः परमेश्वरि ।
द्वितीयश्च महेशानि श्रीगंगालक नंदयोः ।
संगमः कथितो देवि प्रयागाख्यो महीश्वरि ।
तृतीयोऽपि प्रयागोऽयं वितस्ता सिंधु संगम
एतेषु त्रिविधेषूक्तः श्रेष्ठः पुण्यतमः परः ।।

भृ० सं०)

सूर की आंखें

प्रीति कुमार

हिन्दी साहित्य को अपने अन्ध कवि "सूर" पर सदियों से गर्व रहा है। कृष्ण भक्ति शाखा के माधुर्य और अध्यात्म को आत्मसात् करके कृष्ण के प्रेम में आकण्ठ डूबे इस कवि की काव्यमय भक्ति भावना अपने में अनूठी है। वस्तुत: सूरदास आदि अष्टछाप के सरस, रसज्ञ कवियों के कारण ही कृष्ण-भक्ति शाखा की धारा आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध तक का स्पर्श करने में समर्थ हुई, इसके विपरीत राम-भक्ति शाखा की कोरी दार्शनिकता एवं बौद्धिकता ने उसके काव्य रस-पादप की धारा को शीघ्र ही सोख लिया। सूरदास कृष्ण भक्त कवियों के सिरमौर हैं अष्टछाप की माला के सुमेरु हैं। उनकी भावुक भाव-प्रवणता, रसीली रसिकता, एवं सफल सरलता पर हम सदैव ही मुग्ध होते आए हैं। सूर ने कृष्ण-चरित् के सीमित अंशों को ही अपना वर्ण्य विषय बनाया था पर उस क्षेत्र में उनका वर्णन विलास विलक्षण एवं विविध है। कृष्ण के बाल रूप तथा किशोर-चापल्य ने ही सूर के मन को मोहा-भ्रमर-गीत में उनका प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचा और उसके आगे जाने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी। जिसने कृष्ण के प्रेम की थाह अवगाही उसके लिए शेष रहा ही क्या? भावों की रत्न-भरी भूमि में पैठ कर सूर ने जो अनमोल सौम्य रत्न प्राप्त किए हैं, शताब्दियों से उनकी ज्योति अप्रतिम है और रहेगी। हिन्दी साहित्य सूर की जोड़ का एक भी अन्य भोला भावुक प्रेमिल कवि उत्पन्न नहीं कर सका है।

अपने आराध्य कृष्ण एवं राधा को लेकर उन्होंने जो काव्य सृष्टि की उसका शब्द-शब्द सजीव है और अक्षर-अक्षर मुखरित है। यों तो सर की वर्णित प्रत्येक वस्तु एक विचित्र मनग्राही सौन्दर्य से परिपूर्ण है किन्तु नेत्रों पर कही गई उनकी उक्तियां विशिष्ट रूप से द्रष्टव्य हैं। इस नेत्र विहीन कवि ने जितनी

सुन्दर सार्थक एवं उत्तम उक्तियां नेत्रों पर कहीं हैं हिन्दी क्या विश्व के किसी भी नेत्रवान कवि ने कहने की कल्पना नहीं की है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने इस हीन अंग के प्रति कवि का अतिरिक्त अनुराग था। आश्चर्य होता है एक जन्मांध व्यक्ति नेत्रों का कितना सूक्ष्म वर्णन एवं विश्लेषण कर सकता है। विशेषत: भ्रमर-गीत में नेत्रों को लेकर जो पद-योजना की गई है वह अपने ढंग की अनूठी कही जायेगी।

कृष्ण के अनुपम रूप-माधुर्य का रस-पान करने का एकमात्र साधन यह नेत्र ही हैं किन्तु सूर इन से—इनके लघु आकार से सन्तुष्ट नहीं हैं। कहां सुन्दरता का अथाह सागर और कहां ये दो नेत्र। ठीक ही है यदि "पूरनता रत नयनन न पूरी" फिर भी जब से श्री कृष्ण को देखा है सूर के नेत्र मतवाले हो कर उन्हीं का रस पान करने में लीन हो गए हैं। नेत्रों के द्वारा प्रणय और भक्ति की एकात्मकता का साकार रूप प्रस्तुत किया है इन शब्दों में

ऊधो ! इन नयनन नेम लियो
नँद-नंदन सों पतिव्रत बांध्यो-दरसन नाहि बियो ॥
इन्दु-चकोर, मेघ प्रति चातक जैसे धरन दियो
तैसे से लोचन गोपाले एकटक प्रेम पियो ॥

इन्दु और चकोर, मेघ और चातक की चितेरी अटूट प्रेम-रीत का आदर्श सूर ने अपने सामने रक्खा। सूर की यह अंधी आंखें हरि रंग में रंग रही हैं।

उधो ! आंखिया अति अनुरागी
इकटक मन जोवत अरु रोवति, भूलेहु पलन न लागी ॥
बिन पावस पावस ऋतु आई, देखन जै विदमान
अब धौं कहा कियो चाहत हों ? छोड़हु नीरस ज्ञान ॥

सूरदास ने नेत्रों का मानवीकरण करके उनके द्वारा गोपियों की और साथ ही स्वयं अपने भक्त-हृदय की समस्त आन्तरिक भावनाओं की अद्भुत अभिव्यंजना की है। मानों नेत्र ही गोपी-कृष्ण प्रेम के माध्यम हैं—सारा दोष सारा अपराध-उन्हीं का है जो कृष्ण को देखते ही दिवाने होकर सुध-बुध भूल जाते हैं। गोपियां अपनी आसक्ति और अपनी दु:खितावस्था का आरोप नेत्रों पर करके बड़े ही करुण भाव से कह उठती है :

मधुकर ! ये नयना पै हारे।
निरखि निरखि मग कमलनयन को प्रेम भावन भए भारे

ता दिन तें नीदौं पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे
सपन तुरी जागत पुनि कोई जो है हृदय हमारे ।।

नेत्र ही ऐसे विचित्र हैं जो हरि-दर्शन करते ही स्वयं को उन्हें समर्पित कर बैठे हैं । गोपियां अपनी भोली भावुकता में आंखों को दोषी ठहरा कर कहती हैं :

अँखिया अजान भई ।
एक अंग अवलोकत हरि को और हुती सो गई ।।
यों भूली ज्यों चोर भरे घर चोरी निधि न लई ।
बदलत भोर भयौ पछितानी करे तें छांड़ि दई ।।
ज्यों मुख की पूरन हो त्यों ही पहिलेई क्यों न रई ।
सूर सकति अति लोभ-बह्यो है उपजति पीर नई ।।

ऐसी आंखों को अव केवल नन्द नंदन का ही सहारा है—एक राग, एक अनुराग, एक ध्यान गोपी-कृष्ण का ही है :—

नयन नद नंदन ध्यान ।
तहां लों उपदेश दीजे जहां निरगुन ज्ञान ।।

कृष्ण के वियोग में दुःखनी गोप-बालाओं का सारा दुःख नेत्रों के कारण ही उद्भूत माना है । नेत्र—जो सबसे अधिक संवेदन शील अंग होते हुए भी मूक हैं, जो अत्यंत कोमल कमनीय होते हुए भी अपने आराध्य के रूप-रस-पान में दृढ़ता से लिप्त हैं—"सूर दास स्वामी बिन देखे लोचन भरम पियास"—अतृप्त कामना की कैसी सजीव व्याख्या है । दर्शन रस पीने से आंखों की जो दशा हो गई वह वास्तव में शोचनीय है । सूर ने अपने इसी अभावमय अंग का सहारा लेकर अपने हृदय की मर्मान्तक पीड़ा का उद्घाटन कैसे सीधे सरल शब्दों में किया है :—

और सकल अंगन तें ऊधौ । अंखियां अधिक दुखारी
अतिहि पिरति, सिराति न कबहूं, बहुत जतन कर हारी
एकटक रहित निमेष न लावति, बिथा बिकल भई भारी
भरि गई बिरद-वाय बिन दरसन, चितवति रहति उघारी
रे रे अलि ! गुरु ज्ञान सलाकहि को सह सकति तुम्हारी
सूर सुअंजन आनु रूप-रस-आरति हरन हमारी

ऊधौ के ज्ञान भंडार को शलाका कह कर नेत्रों के द्वारा उसे असहृदय बता दिया है—ऐसे दुःखित तपते नेत्रों को तो "रूप-रस" का सुअंजन ही

शीतलता दे सकता है। कितनी सरलता से ऊधौ के ज्ञानोपदेश की निरर्थकता सिद्ध कर दी है। ऊधौ के ज्ञान संदेश को सुनकर गोपियों को जो क्षोभ होता है उस क्षोभ एवं कुण्ठा को व्यक्त करने का साधन कवि ने नेत्रों को बनाया है। गोपियां और प्रपंच व वाद-विवाद में न पड़ कर एक ही बात सरल भाव से कह उठती हैं : --

अखियां हरि दरसन की भूखी
कैसे रहें रूप रस राची ये बतियां सुनि रूखी
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नई भूखी
अब इन जोग संदेसन ऊधौ अति अकुलानी दूखी ॥

ऊधौ का ज्ञान-उपदेश जले पर नमक की भांति है। प्रतीक्षा में हरि का मार्ग देखते हुए भी जो नेत्र इतने दुःखी नहीं थे वह अब इस योग संदेश को सुन कर हो गए हैं। क्योंकि प्रतीक्षा में आशा का पुट था पर उद्धव का उपदेश उस आशा-दीप को बुझाने की सोचता है। फिर भी गोपियां अपनी विवशता दिखाती हैं—उन्हें निर्गुण-सन्देश सुनने में कुछ भी पीड़ा न होती—किंचित मात्र भी क्लेश न होता—यदि 'ये पागल नेत्र भगवान ने उन्हें न दिए होते—उद्धव की ज्ञान-गाथा इन्हें ही पीड़ित करती है

यहै सुनत ही नयन पिराने
जब ही सुनत बात तुव मुख की रोकत रमत डराने
बारम्बार स्याम घन २ तें जानत फिरत लुकाने
हमको नाहि पतियात तबहि ते जब ब्रज आपु समाने
नातरू कहो काछ हम काछत वैभव जानि छपाने
सूर दोष हमरे सिर धरिहो तुम हौं बड़े सियाने ॥

उद्धव के ज्ञान-संदेश का प्रभाव इन "दोऊ नैनन" पर हीं विशिष्ट रुपेण परिलक्षित होता है—उनके ज्ञान संदेश से यह दुखियारे बेहाल हो गए हैं

उमगि चले दोऊ नैन विसाल
सुनि सुनि यह सन्देश स्यामघन सुमरि तिहारो गुन गोपाल ॥

कृष्ण के बिना गोपियां रह सकती हैं। जिस-किसी प्रकार से जीवन बिता सकती हैं परन्तु

ऊधौ क्यो राखो यह नैन
सुमरि सुमरि गुन अधिक तपत है सुनत तिहारो बैन

हैं जो मनोहर बचन चन्द के सादर कुमुद चकोर।
परम तृषारत सजल श्याम घन के जो चातक चोर॥

इन सजल स्याम घन के चातक रूपी ये नेत्र स्वयं भी "सजल" ही हैं। गीली आंखों की करुण व्यथा कहने वाले सूर का विरह वर्णन व्यंजना और व्यग्यार्थ से पूर्ण है। ऊहात्मक वर्णनों का नितान्त अभाव होने का कारण उनकी सूक्ष्म पर्यालोचन शक्ति है जो आँख की गहराई में डूब कर विरह-व्यथा का अवलोकन करने में समर्थ है। गोपियों के अश्रु प्रवाह का दर्शन करा कर ही सूर उनके अतुल असीम दुःख का आभास कराना चाहते हैं। वस्तु वर्णन की यह परोक्ष प्रणाली कितनी प्रभावशालिनी है। विरह की विपुल वेदना का वर्णन अन्य हावों, भावों या दशाओं द्वारा न करके सूर ने इन नयनों का आलम्बन ग्रहण किया है—गोपियों के दुःख की गहनता का दर्शन इन पंक्तियों से होता है:—

देखो भाई। नयनन्ह सौं घन हारे
बिन ही ऋतु बरसत निसि बासर सदा सजल दोऊ तारे॥
सुमिरि सुमिरि गरजत निसि बासर अश्रु सलिल के धारे।
बूड़त वृजहि "सूर" को राखे बिन गिरवरधर प्यारे॥

ब्रज गोपियों की अश्रु सरिता में वास्तव में डूबना ही चाहता है—भावना की एकात्मकता और आलम्बन की सूक्ष्मता इस कथन को कितना मार्मिक बना देती है। पावस और अश्रु-पात की उपमा तो सूर को मानो अत्यन्त ही प्रिय थी। उनकी अंधी आंखें पिघल कर बह जाने को आतुर प्रतीत होती हैं

निसदिन बरसत नैन हमारे
सदा रहत पावस ऋतु हम पर जब ते स्याम सिधारे॥

तथा—नैन घट घटत न एक घड़ी।

कबहु न मिटत सदा पावस दृग लागी रहति झरी
विरह इन्दु न घटत निस बासर बदि अति अधिक करी।
अरध उसास समीर नेत्र जल उर भुवि उमँगि भरीं॥

नैन घट के इस रूपक के सदृश सूर ने अपनी भाव-प्रवणता के द्वारा नेत्रों को लेकर अनेक रूपकों तथा सांग रूपकों की रचना की है। आंखों और आसुओं के द्वारा जिन सुन्दर रूपकों की रचना हुई है उनका सौन्दर्य और सुषमा अनुभव की वस्तु हैं वर्णन की नहीं—फिर भी एक झलक प्रस्तुत है

तुम्हरे विरह वृजनाथ अहो प्रिय। नयनन नदी बढ़ी।
लीने जान निमेष कूल दोउ ऐते मान चढ़ी

गोलक नव-नौका न रुकत चाले स्यो सरकनि बढि बोरत
अरध-स्वास समीर तरंगन तेज तिलक तरु तोरत ।।
कज्जल कीच कुचील किरतट अतर अधर कपोल
रहे पथिक जो जहां सो तहां काक हस्त मरू मुख बोल
नाहिंन और उपाय रमापति बिन दरसन छन जीजै
अश्रु सलिल बूड़त सब गोकुल 'सूर' सुकर गहि लीजै ।।

कहीं-कहीं इस प्रकार के भाव-भीने रूपक बांधते हुए सूर आध्यात्मिकता तक जा पहुंचे हैं :

कैसे पनघट जाऊं सखी री, डोले सरिता तीर ।
भरि भरि जमुना उमड़ि चली है इन नैनन के नीर ।
इन नैनन के नीर सखी री, सेज भई घर नाऊं ।
चाहति हौं यही में चढिकै स्याम-मिलन को जाऊं ।

रीति-कालीन वर्णन को स्पर्श करती प्रतीत होने पर भी सूर की सरसता, रसज्ञता और भाव प्रवणता अपनी ही है । जिस अंग पर सूर इतना अनुराग प्रदर्शित करते रहे हैं जिसका वर्णन करके उन्होंने विरही-जन की पीड़ा का अंकन किया, जिसको वेदना के कारण विरह–व्यथा असह्य ही उठी है उसी अंग (नेत्र) के प्रति अविश्वास भरी यह उसांस कितनी व्यथित एवं द्रवित करने वाली है :

बिछुरत श्री ब्रजराज आज सखि, नैनन की परतीत गई ।
उड़ि न मिले हरि संग विहगंम, ह्वै गए घनस्याम मई ।
यातें क्रूर कुटिल सह मेचक वृथा मीन छवि छीन लई ।
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछु तो न भई ।
अब काहे को सोचत, जल मोचत, समय गए नित सूल नई ।
सूरदास याही ते जड़ भए जब ते पलकन दगा दई ।

एक एक शब्द में कैसे गहनतम् भाव गुम्फित हैं । "पलकन दगा दई" कह कर सूर ने अपने हृदय की समस्त आकुलता उडेल दी है । विरह दु:ख की चरमावस्था जड़ित बन जाना ही हो सकती है । कविओं को जो नेत्रों की अनेक वस्तुओं से उपमा देकर उनका मान बढ़ाते हैं—सूर बहुत बुरा भला कहते हैं क्योंकि उनके नेत्रों ने उन्हें धोखा दिया कवियों की उक्तियों के विपरीत कार्य किया । खीझ कर सूर कह उठते हैं :

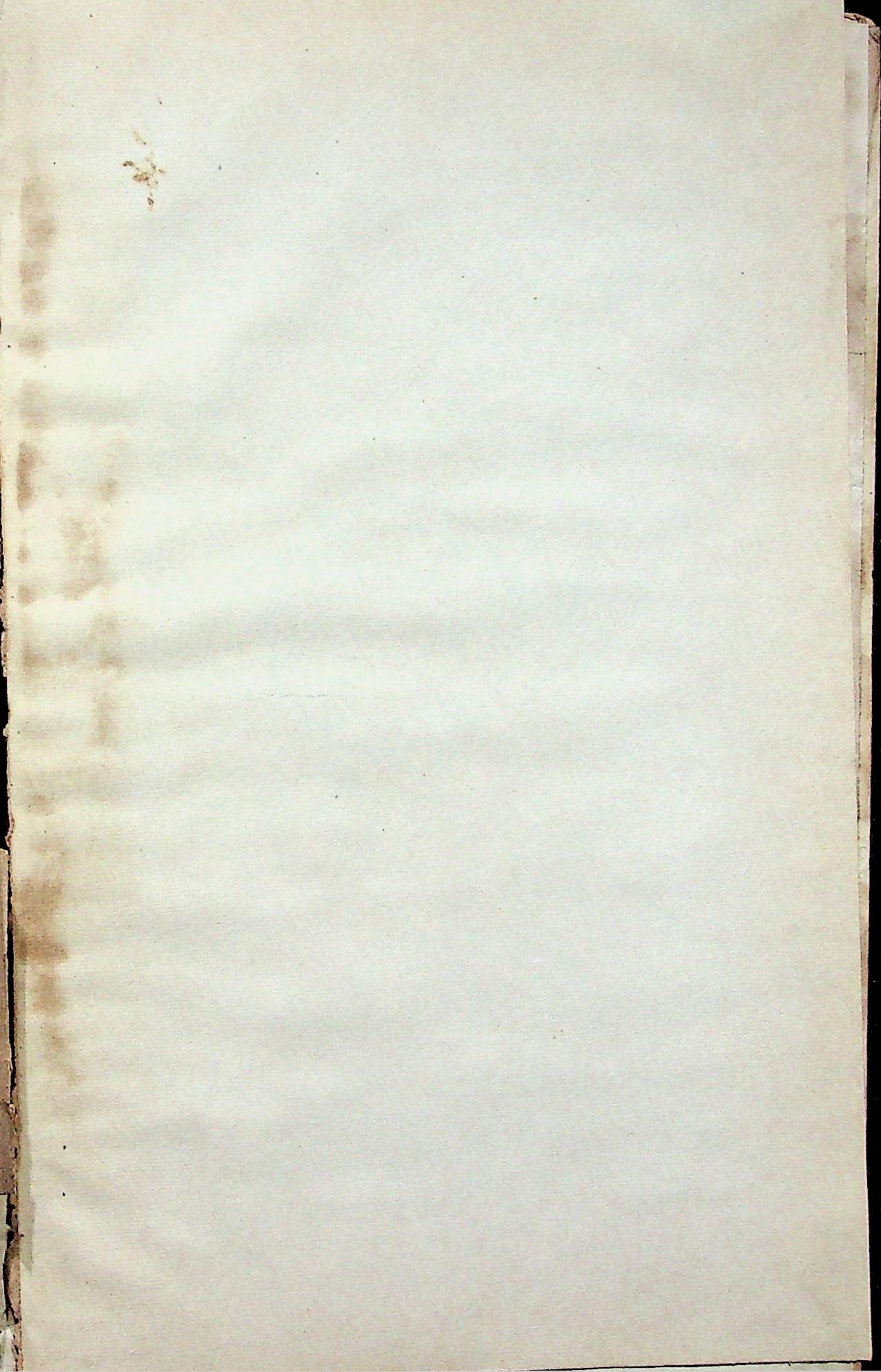
उपमा नैन न एक गही ।
कविजन कहत कहत चल आए, सुधि करि करि काहु न कही ।।

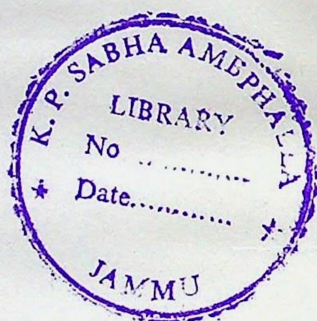
कहें चकोर, मुख- विधु बिन जीवन, भंवर न तहँ उडि जात।
हरि मुख कमल कोस बिछरे तें ढाले क्यों ठहरात
खंजन मनरंजन जन पैं, कबहुं नाहि सतरात
पंखि पसार न उडत भेद है समर समीप बिकात
आए बंधन व्याध ह्वै उधौ जो मृग क्यों न पलाय
देखत भागि बसे घन बन में जहं कोउ संग न जाय।

इस प्रकार सूर सब उपमाओं को व्यर्थ सिद्ध करते हुए केवल "मीनता" को ही उपयुक्त ठहराते हैं क्योंकि ये नेत्र सदैव "सजल" रहते हैं।

भ्रमर गीत प्रसंग में सूर ने अपनी भाव-प्रवज्ञता रस-चातुर्य और वर्णन-माधुर्य का परिचय दिया है। जितना सूक्ष्म पर्यालोचन, गूढ़ भावाभिव्यंजन हमें इस प्रसंग में मिलता है वह किसी अन्य कवि के किसी अन्य प्रसंग में दुर्लभ है। नेत्र जैसी लघु वस्तु को लेकर अनगिनत पदों की रचना जिस महाकवि ने कर डाली है उसकी वर्णन -प्रणाली की प्रबल शक्ति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। सूर द्वारा कथित आंखों की इन उक्तियों को समझने के लिए सरस हृदय चाहिए क्योंकि इन का एक एक शब्द गहन भावों से भरा हुआ है। जिसे पूर्णत: आत्मलीन होकर ही समझा जा सकता है। सूर की आंखों को अंधी किन्तु प्रेमिल आंखों को समझने के लिए पाठक में उतनी ही कोमलता, भावुकता सजगता और स्नेहिलता होनी वांछनीय है। उनके बंद नेत्रों ने नेत्रों का जितना सौन्दर्यमय वर्णन किया है उसे आत्मसात् करने के लिए सहृदयता एवं सौजन्य की अपेक्षा है। वास्तव में सूर की सी अंधी आखें ही हमें "स्याम-प्रेम" की गहनता समझने को चाहिए उन की आँखों की महत्ता कैसे समझी जा सकती है स्वयं "स्याम" की "स्यामता" उन्हीं के कारण है।

सूर की प्रीति कहा कहिये, अंखियान की स्यामता स्याम को दीन्ही ॥"




K. P. SABHA AMEPHALLA
LIBRARY
No ....
Date............
JAMMU



